विधवा-विवाह

लेखक—राधेलाल चतुर्वेदी

विधवा-विवाह

लेखक—

श्री० राधेलाल चतुर्वेदी

मुद्रक—

फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज

इलाहाबाद

प्रकाशक—

राधेलाल चतुर्वेदी

७७, लूकरगञ्ज इलाहाबाद
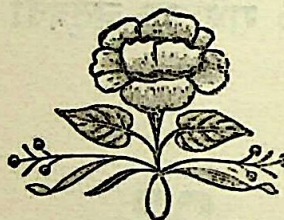
मुद्रक—

आर० सहगल

फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज

इलाहाबाद

क्रमाङ्क	विषय			पृष्ठ

विधवा-विवाह

मी दयानन्द सरस्वती का स्वर्गवास हुए आज ४६ वर्ष होते हैं, और इसी तरह से ईश्वरचन्द्र विद्यासागर उपनाम करुणा-सागर को मरे हुए ३८ वर्ष व्यतीत हो गए हैं, परन्तु देश में विधवाओं की दशा आज भी प्रायः वैसी ही शोचनीय है। आज भी विधवाओं का जीवन पहले जैसा ही निस्सार और लक्ष्यहीन है। पद-पद पर उनको कठि-नाइयों का सामना करना पड़ता है और बिरला ही दिन जाता हो, जब वे अपने जीवन को धिक्कारती न हों। ऐसे जीने से तो मरना भला है, यों रो-रोकर अभागिनी अपने दिन काटती हैं। परमात्मा की यदि यही इच्छा है, तो मैं दीन अबला कर ही क्या सकती हूँ, यह सोच कर क्षण-भर के लिए उसे सन्तोष होता है, परन्तु व्यथित विधवा का दिल फिर भड़क उठता है और उसे यह विश्वास नहीं होता कि दयालु भगवान् की सृष्टि में इतना घोर अन्याय सम्भव है। रह-रह कर सोचती है कि वास्तव में क्या स्वार्थी पुरुष उसकी दुर्दशा का उत्तरदायी नहीं है? बच-

बच कर पग रखती है, पर तब भी तो कुशल नहीं। दुराचारियों की निगाह उस अबोध निस्सहाय अबला पर रहती है, और अहोभाग्य! यदि वह अपने जीवन को निष्कलङ्क व्यतीत कर सके। एक बार पैर ऊँचा-नीचा पड़ गया, फिर उसकी कठिनाइयों की सीमा नहीं रहती। विवश होकर उसे कभी-कभी बड़े पाप भी करने पड़ते हैं।

वैधव्य के भयङ्कर परिणामों को देखते हुए भी हम लोग चुप्पी लगाए हैं। रोग दिन पर दिन बढ़ रहा है, किन्तु पूर्ववत् किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर देशवासी हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। स्वामी दयानन्द के बतलाए हुए नियोग के पालन करने में प्रयत्न में बहुत सी कठिनाइयाँ थीं और इसीलिए नियोग के पुनरुद्धार की बात स्वामी जो तक हो रही। हाँ, पञ्जाब में पुनर्विवाह को कुछ सफलता अवश्य हुई है। हिन्दू-विधवाओं की संख्या सवा दो करोड़ से ऊपर ही है, और इस संख्या में हज़ारों वे शामिल हैं जिनको एक या पाँच वर्ष के भीतर ही वैधव्य भोगना पड़ा। जिस देश में एक तरफ़ दुधमुँही बच्चियों के विवाह होना सम्भव है और दूसरी तरफ़ निर्दयी वैधव्य आवश्यक है, उस अभागे देश का कल्याण कैसे हो सकता है। वास्तव में करुणासागर ने क्या ही सत्य कहा है—"जिस देश की पुरुष-जातियों में दया नहीं, धर्म नहीं, न्याय-अन्याय का विचार नहीं, हित-अहित का ज्ञान नहीं, सत्-असत् की विवेचना नहीं, केवल लोक-रूढ़ियों को बचाए रखना ही परम धर्म है, उस देश में हतभाग्य अबला

आगे चल कर जन्म ही न लें तो ठीक है। हा अबलागण! तुमने पूर्व जन्म में क्या पाप किए, जिसके लिए तुम्हें इस अभागे देश में जन्म लेना पड़ा?"

देश में नई शक्तियाँ काम कर रही हैं। विद्या का प्रचार होने से स्त्री-समाज में हलचल के चिन्ह दिखाई पड़ रहे हैं। शारदा-बिल का समर्थन पढ़ी-लिखी स्त्रियों ने ज़ोर से किया है; इसी तरह से शिक्षित स्त्री-समाज ने पति-पत्नी के क्रियात्मक व्यवहार के लिए १४ या १६ वर्ष की आयु का समर्थन किया है। समाज-सुधार के आन्दोलन में स्त्रियाँ उत्तरोत्तर अधिक भाग लेने लगी हैं, और बड़ी-बड़ी सभाओं की नेत्री बन कर अपनी सुधार-भक्ति का परिचय दे रही हैं। उनके व्याख्यानों से यही विदित होता है कि स्त्री-समाज की दुर्दशा के लिए पुरुष ही विशेष कर उत्तरदायी हैं। उनके बहुविवाह और व्यभिचारों को देख कर स्त्रियों की श्रद्धा पुरुषों के प्रति दिन पर दिन कम हो रही है। अपनी विधवा-बहिनों के दुखों को वे देख नहीं सकतीं। उनका यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि स्त्रियों की दुर्दशा का अन्त स्त्री-समाज के आन्दोलन से ही होगा।

सन् १८८६ में विख्यात नीतिज्ञ मि० जोज़ेफ़ चेम्बरलेन ने किसानों की जाग्रति के सम्बन्ध में व्याख्यान देते हुए एक कहानी सुनाई, जिसका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है—"एक जहाज़ में कई सौ आदमी एक समय यात्रा कर रहे थे। जब पाँच-छः सौ मील जहाज़ निकल गया तो एक यात्री कप्तान के

पास गया और प्रार्थना की कि मेरे लिए स्थान का प्रबन्ध कीजिए। यह सुन कर कप्तान भौंचक्का हो गया। कप्तान ने पूछा कि अब तक तुम किस स्थान पर सोते-बैठते थे? यदि तुम्हारे पास जगह न थी तो यात्रा के आरम्भ में ही मेरे पास क्यों नहीं आए? यह सुनते ही यात्री रो पड़ा। उसने कहा कि मैं बड़ा पापी हूँ, मैं अब तक एक बीमार आदमी के ऊपर बैठा या पड़ा रहता था; मुझे यह विश्वास था कि यह मनुष्य मर जावेगा और उसकी जगह पर मैं अधिकार कर लूँगा, पर वह रोगी बजाय मरने के अच्छा होने लगा है, दिन पर दिन उसमें शक्ति आती जाती है। उसने मुझसे अब तक कुछ भी नहीं कहा है, परन्तु पापी और अन्यायी होने के कारण मैं अब उसके सामने नहीं जा सकता। जो हुआ सो हुआ; पर अब मुझे जहाज़ के किसी अन्य भाग में स्थान दीजिए।" पददलित स्त्री-समाज में भी इसी जाग्रति के चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं। इनके साथ आगे चलकर अत्याचार करना पहले-जैसी सहज बात न होगी। यदि हमने इनके साथ न्याय तथा उचित व्यवहार न किया, तो अपने अधिकारों को ये स्वयं छीन लेंगी।

पहले तो हमें यह देखना है कि विधवाओं की स्थिति क्या है, और सांसारिक नियम से इनका पुनर्विवाह कहाँ तक आवश्यक है। आगे चल कर यह विचार किया जायगा कि क्या पुनर्विवाह शास्त्र-विरुद्ध है? काम की वेदना प्रकृति का एक अटल नियम है। स्त्री के विधवा हो जाने पर यदि कदा-

चित् वह मिट्टी की पुतली हो जाती, तो सम्भव था कि पति के मरने के साथ ही साथ काम की मात्रा का भी नाश हो जाता; यदि विवाह ऐसे समय पर होता कि वह अपने सदाचारी पति के जीवन से शिक्षा ग्रहण करती, तो पति के उच्च आदर्श के प्रभाव से अथवा उसकी प्रेममयी स्मृति से अपने जीवन को निष्कलङ्क बिता सकती; यदि उसी घर, मुहल्ले या ग्राम में व्यभिचार के दृष्टान्त दिखाई या सुनाई न पड़ते; तो सम्भव था कि मान-मर्यादा तथा लोक-लज्जा के भय से वह दुराचारों में पैर रखने का साहस न करती; यदि उचित अवस्था पर विवाह होता तो सम्भव था कि अपनी सन्तान पर ही सब आशा अवलम्बित करके विधवा अन्य कठिनाइयों का सामना करने में समर्थ होती, परन्तु देश की वर्त्तमान स्थिति में प्रत्येक बात पातिव्रत्य-धर्म की रक्षा के विपरीत है। विवाह साधारणतया उस समय पर किया जाता है, जब कि कन्या संस्कार के मन्त्रों के मर्मभेदी भाव को समझ ही नहीं सकती। वृद्धों के विवाह और पुरुषों के बहुविवाह का स्त्रियों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। विधवा होने के पश्चात् उनका निरन्तर सम्मान करने की जगह उनको अपमानित किया जाता है। व्यभिचार से दूषित वायु-मण्डल में रहते हुए साधारण स्त्री के लिए यह अत्यन्त कठिन है कि ऐसे कुत्सित विचारों को अपने पास भी न फटकने दे, और अपने जीवन को आदर्श बना सके। दुखी अथवा असन्तुष्ट विधवा को अपने धर्म से पतित होने के लिए बड़े प्रलोभन

की आवश्यकता नहीं, और जिनको देश की स्थिति से भली-भाँति परिचय है, वे बतला देंगे कि विधवाओं के विधर्मी होने के कारण ईसाई तथा मुसलमानों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। विधवाओं के दुःख का कवि ने कैसा अच्छा चित्र खींचा है। इसे पढ़ कर अपनी आत्मा से स्वयं पूछिए कि इसमें क्या अत्युक्ति है :—

हम जीती जलती जाती हैं, जीवन हुआ श्मशान हमें।
अब तो सहा नहीं जाता है, दे मैया, विषदान हमें॥
या अपना तिरशूल हूल दे, मरने दे, मर जाने दे।
शुभ चिन्हों से रहित देह यह, गिद्धों को खा जाने दे॥

विधवाओं की देख दशा तू, मन में कुछ करुणा लाना।
माँ तुझसे है यही प्रार्थना, अब न पुत्रियाँ उपजाना॥
यदि उपजें तो दूर फेंकना, उनको दूध पिलाना मत।
भूल प्यार मत करना उनको, अपनी गोद खिलाना मत॥

फिर भी जीवें तो विवाह का, उनको नाम सिखाना मत।
ब्याह हुआ तो विधवा होंगी, माँ, यह दृश्य दिखाना मत॥
हिन्द-देवि, यों तेरी लाखों, ललनाएँ लाचार हुईं।
कहता है संसार—"अभागी हैं, दुनिया को भार हुईं"॥

किसे हाय ! इनकी चिन्ता है, डायन हैं, मर जावें ये।
कोई नहीं सहारा देता, भले कलङ्क लगावें ये॥
चाहे अपने चित्कारों से, नभ-मण्डल दहलावें ये।
चाहे अपनी गर्म आह से, हिन्द-जाति जलावें ये॥

जहाँ एक सीता, सावित्री, दमयन्ती उद्धार करें।
तहाँ हाय! लाखों ललनायें, विधवा हो बे-मौत मरें॥
आँख मूँद हिन्दू-समाज तू, स्वेच्छाचार सिखा इनको।
या आशा का सन्देशा दे, विजयी मार्ग दिखा इनको॥

समस्त संसार की जन-संख्या इस समय १ अरब साढ़े ६४ करोड़ से ऊपर है, जिसमें लगभग साढ़े चौवन करोड़ ईसाई हैं, साढ़े छियालीस करोड़ बौद्ध हैं, बाईस करोड़ से ऊपर मुसलमान, और लगभग साढ़े इक्कीस करोड़ अभागे हिन्दू हैं। अर्थात् बड़ी जातियों में हिन्दुओं की संख्या सब से कम है। मुग़लों के भयङ्कर अत्याचार के समय भी हिन्दुओं की संख्या इस देश में प्रति सैकड़ा अस्सी थी। १८८१ ई० में हिन्दुओं की संख्या प्रति सैकड़ा ७४ ही रह गई थी। पण्डित लोगों का अनुमान है कि कदाचित् हिन्दुओं की संख्या प्रति सैकड़ा अब ६६ से अधिक नहीं है। यदि यही क्रम रहा तो चार सौ वर्ष-पर्यन्त हिन्दुओं का अस्तित्व ही मिट जाना चाहिए। सन् १९११ की मनुष्य-गणना के अनुसार ईसाइयों की संख्या इस देश में तीन लाख सत्तासी हज़ार थी। १९११-२१ तक अर्थात् दस साल में ईसाइयों की संख्या नौ लाख बढ़ी और इन्हीं दस सालों में हिन्दुओं की संख्या साढ़े आठ लाख घटी। इसके माने यह हुए कि इन दस सालों में प्रतिदिन ईसाई प्रायः २४४ बढ़े और इतने हिन्दू प्रतिदिन घटे। हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए इस समय भारतवर्ष में १३७ मिशनरियों की संस्थायें काम कर रही हैं,

जिनमें लगभग १६००० पादरी और ५०० डॉक्टर दिन-रात लगे हुए हैं। इन मिशनों के ४०३ अस्पताल, ४३ छापेख़ाने और ६३ पत्र काम कर रहे हैं। कॉलेज और स्कूल द्वारा ईसाई लोग ४८,००० हिन्दू बालकों को शिक्षा दे रहे हैं और मुक्तिसेना, जिसमें सैकड़ों यूरोपियन अफ़सर काम कर रहे हैं, अपना अलग काम कर रही है। पञ्जाब प्रान्त में सन् १८८१ में चार हज़ार से भी कम ईसाई थे। अब उनकी संख्या साढ़े तीन लाख है। जहाँ तक मुझे मालूम है, हिन्दुओं की संख्या पञ्जाब में सत्तासी लाख से अधिक नहीं है। और इसमें ७ लाख विधवाएँ और सोलह लाख कुँवारे या रँडुए हैं। बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि इन तेईस लाख से हिन्दुओं की गणना में केवल कमी ही न होगी, परन्तु इसमें से कई लाख हिन्दू-धर्म को तिलाञ्जलि देकर विधर्मियों का संख्या बढ़ावेंगे। आसाम, बिहार, मद्रास, ट्रावनकोर में विशेष कर ईसाई-धर्म बड़े वेग से फैल रहा है और ४० वर्ष में कुल भारतवर्ष में ईसाइयों की १५५·२ प्रत्येक सैकड़ा वृद्धि हुई है। हिन्दुओं की मूर्खता, अदूरदर्शिता और उदासीनता को देख कर मुसलमान लोग भी चुप नहीं रहे, और उनकी भी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। १९२७ ई० के आठ महीने में केवल दिल्ली में चार हज़ार हिन्दू मुसलमान बनाए गए। जिसके माने यह हुए कि केवल जुम्मा मस्जिद में प्रत्येक दिन सोलह हिन्दुओं ने हिन्दू-धर्म को तिलाञ्जलि दी। अन्य धर्म्मावलम्बियों का इसमें कुछ भी दोष नहीं है, इसका उत्तरदायी केवल हिन्दू-समाज है।

मुझे बतलाने की आवश्यकता नहीं कि हर मनुष्य का अधिकार है कि वह जिस धर्म को चाहे, उसे स्वीकार करे। दुःख तो इस बात का है कि हिन्दू-समाज के भीतर विधवाओं का जीवन इतना दुःखमय हो गया है कि उन्हें विवश होकर अन्य धर्मों की शरण लेनी पड़ती है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अन-मेल-विवाह और बहुविवाह ने हिन्दू-जाति को बड़ी क्षति पहुँचाई है। ऐसे ही विवाहों के कारण जवान विधवाओं की दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। भारतवर्ष में स्त्रियों की संख्या लगभग ११ करोड़ है। इसमें सवा दो करोड़ के क़रीब हिन्दू-विधवाएँ हैं और इनमें से लगभग तीन लाख तो ऐसी हैं, जिनका पति के साथ सहवास भी नहीं हुआ, और प्रायः एक करोड़ ऐसी हैं जो जवान हैं। प्रत्येक हज़ार हिन्दू औरतों में १९१ विधवा हो जाती हैं। बङ्गाल को छोड़ कर प्रत्येक प्रान्त में ब्राह्मणों में ही विधवाओं की संख्या बढ़ी-चढ़ी है। केवल एक मथुरा में ही प्रायः ५०० और ६०० के बीच में विधवाओं की संख्या बतलाई जाती है। अत्रि और वसिष्ठ मुनियों का स्पष्ट कथन है कि यदि स्त्री स्वयं झगड़ा करके अथवा पति आदि से निकाल देने पर बल या छल से किसी गुण्डे के हाथ में पड़ कर दूषित हो जाय, तो वह त्यागने योग्य नहीं है। इसी तरह से देवल, अत्रि आदि मुनियों ने शुद्धि के कई विधान लिखे हैं। पर देश के द्रोही इन शास्त्रों को ताक पर रख कर इन वचनों को भूले तो ख़ूब भूले! परिणाम यह हुआ

कि यदि कोई विधवा किसी कारण से एक दफ़े किसी विधर्मी के पञ्जे में आ गई, तो फिर सदा के लिए उसका हिन्दू-जाति से नाता टूट गया। यदि कोई पुरुष हिन्दू-धर्म को छोड़ता है, तो केवल एक व्यक्ति की ही हानि होती है, पर यदि कोई युवा स्त्री निकल जाती है, तो पहले की अपेक्षा समाज का क्षय चौगुना-पचगुना समझना चाहिए। सुनिए, लाहौर के बैरिस्टर मुहम्मद अमीन (भूतपूर्व लाला सागरचन्द) अपने भाषण में मुसलमानों से क्या कहते हैं :—

"हिन्दुओं में लगभग ढाई करोड़ विधवाएँ हैं, जो हिन्दू-समाज के .ज़ुल्मों की वजह से तड़प-तड़प कर अपनी ज़िन्दगी बसर कर रही हैं। अगर मुसलमान इन विधवाओं को मुसलमान बनाने के लिए कोशिश करें, तो वे इस्लाम की बहुत हद तक ख़िदमत कर सकेंगे। इसके लिए हर शहर में मुसलमानों का एक विधवाश्रम बनना चाहिए। जिसमें हिन्दी में यह लिखा हो कि जो विधवा यहाँ आकर शादी करना चाहे, वह मुसलमान होकर .ख़ुशी से कर सकती है। इस तरह अगर ढाई करोड़ हिन्दू-विधवाएँ मुसलमान हो गईं और उन्हें ४-४ बच्चे भी पैदा हुए तो कुछ ही दिनों में हममें साढ़े बारह करोड़ की तादाद मिल जायगी, और यह तादाद 'शुद्धि और सङ्गठन' के आन्दोलनों का नाश करेगी।"

क्षण-भर के लिए सोचिए, अनाथ अबलाओं के साथ दिन-प्रति दिन कैसा अन्याय अत्याचार हो रहा है। शास्त्रों के कुछ

वचन तो कन्याओं का युवावस्था पर विवाह होने नहीं देते। शास्त्रानुसार विधवा-विवाह को हम हठ या अज्ञानवश प्रचलित होने नहीं देते। सती की प्रथा को हमारे शासकगण काम में नहीं आने देते। और न उनकी रक्षा तथा पोषण के लिए कोई आश्रम खोलने का प्रवन्ध करते हैं। अब बेचारी अरक्षित विधवा कर ही क्या सकती हैं? पतिव्रता देवियों की बात छोड़ दीजिए; उनकी संख्या तो नियमित है। साधारण स्त्री सब तरफ़ से ठुकराई जाकर या तो गुप्त व्यभिचार करे, भ्रूणहत्या की पापिनी बने, वेश्या का पातकी जीवन ग्रहण करे, राह की भिखारिन बने अथवा किसी अन्य धर्म का आश्रय ले! यदि हम आँखें खोल कर देखें तो हमें मालूम होगा कि हिन्दू-विधवाओं की एक बड़ी संख्या विवश होकर उपर्युक्त एक न एक कुत्सित कर्म द्वारा देश और जाति को कलङ्कित कर रही है। ऐसी परिस्थिति में भी जो सदाचार और पवित्रता के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं, उनकी जो कुछ प्रशंसा की जावे, वह थोड़ी है।

बाल-विवाह की प्रथा धीरे-धीरे कम अवश्य हो रही है, परन्तु अब तक बड़ौदा, मध्यदेश, संयुक्तप्रान्त और बिहार में कुछ जातियाँ ऐसी हैं, जिनमें दुधमुँही बच्चियों का विवाह हो जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि में पहली स्त्री से सन्तान होते हुए भी एक से अधिक विवाह की प्रथा जारी है। मिथिला में तो विवाह को एक खेल-सा समझ लिया है। ऐसे बहुत से आदमी मिलेंगे, जिनके चार-चार, पाँच-पाँच विवाह हो चुके हों—

और किसी-किसी के तो एक दर्जन तक विवाह हो जाते हैं। वेश्याओं में भी उत्तरोत्तर वृद्धि का कारण स्पष्ट है। विधवा का एक दफ़े पैर ऊँचा-नीचा पड़ गया, फिर तो अधिकांश में उसे अन्त में इसी पातकी जीवन का सहारा लेना पड़ेगा। तीर्थस्थान व्यभिचार के अड्डे बन गए हैं, और इन जगहों में भ्रूणहत्याओं का पाप भी अधिक होता है। बङ्गाल के नवद्वीप का उदाहरणवत् हाल सुन लीजिए! वहाँ बङ्गाल, आसाम और बिहार-उड़ीसा के भिन्न-भिन्न ज़िलों से विधवाएँ आती हैं। कुछ मातृमन्दिर तो ऐसे हैं, जिनमें गर्भ की रक्षा होती है। पर इनकी देखा-देखी बहुत से ऐसे मातृमन्दिर बन गए हैं, जहाँ बच्चों का वध होता है। बचे-बचाए बच्चे ईसाइयों के हाथ तीन या चार रुपए में बेच दिए जाते हैं। इन लोगों को इन गुप्त मन्दिरों का सब हाल मालूम है और गङ्गा के दूसरे तट पर यानी कृष्णनगर में इन लोगों ने बच्चों को ख़रीदने के लिए एक अनाथालय खोल रक्खा है। इसके बाद यदि हिन्दुओं की संख्या में उत्तरोत्तर ह्रास हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। यदि जान-बूझ कर अपने गले पर ये छुरी चलावें तो इनको कौन रोक सकता है। अभागे देश के भाग्य उदय होने में अभी देर मालूम होती है, वरना यह सम्भव न था कि ऐसे विषम प्रश्न के प्रति इतनी उदासीनता दिखाई जाती। नियोग तथा पुनर्विवाह पुरातन समय में इस देश में अवश्य प्रचलित थे, और पुनर्विवाह की प्रथा कुछ जातियों में अब भी जारी है।

दसकोशी श्रीमाली ब्राह्मण, जो अहमदाबाद ज़िले में रहते हैं, पुनर्विवाह करते हैं। जयपुरी ब्राह्मणों में भी कहीं-कहीं यह प्रथा प्रचलित है। मेवाड़ के गज़ेटियर से पता चलेगा कि उस जाति के नातरायत राजपूतों में यह प्रथा जारी है। दइया चौहान, सेवरा परमार, सिसोदिया, देवड़ा गोयल, वाड़ा इत्यादि ८७ प्रकार के राजपूत हैं, जिनमें नातरा होता है। पर थोड़ी देर के लिए यदि यह भी मान लिया जाय कि शास्त्रों में पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं है तो क्या निरन्तर क्षीण होता हुआ हिन्दू-समाज इस प्रश्न को जैसा का तैसा छोड़ने को तैयार है? यदि तैयार है तो भविष्य सर्वथा अन्धकारमय है। माना कि सुशिक्षित स्त्रियों में कुछ जाग्रति के चिन्ह दिखाई पड़ रहे हैं, परन्तु विधवाओं के उद्धार के लिए इनको बहुत दिनों तक आन्दोलन करना पड़ेगा। जहाँ एक-एक घड़ी भारी बीत रही है, वहाँ तो करुणामय परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि इस मुग्ध तथा सुप्त हिन्दू-समाज को शीघ्र बुद्धि दें।

सर्व-साधारण में यह भ्रम फैला हुआ है कि विधवा-विवाह शास्त्र-विरुद्ध है और इसलिए आवश्यक है कि शास्त्रों का प्रकाश इस विषय पर डाला जाय। लघु आश्वलायन, कश्यप और व्यास विधवा-विवाह के विरोधी हैं। बृहस्पति के नाम से जो स्मृति प्रचलित है, उसके अनुसार पुनर्विवाह वर्जित है। परन्तु गौतम-धर्मशास्त्र के मस्करि भाष्य में बृहस्पति के नाम से वही 'नष्टे मृते' इत्यादि वचन उद्धृत किया गया है, जो कि

पाराशर और नारद-स्मृति में पाया जाता है। अङ्गिरा और वृहत्यम ने पुनर्विवाह को हीन माना है। मनु, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, नारद, विष्णु, पराशर, वौधायन, शातातप—ये स्पष्ट रूप से अक्षत योनियों के पुनः संस्कार की आज्ञा देते हैं। याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, नारद, विष्णु और पराशर ने क्षत और अक्षत-योनि दोनों के पुनर्विवाह का विधान किया है। पराशर-माधव और निर्णयसिन्धु में उद्धृत कात्यायन के वचन के अनुसार विवाहिता कन्या का दूसरा पति हो सकता है—यदि उसका पति नपुंसक, पतित, दुराचारी इत्यादि होवे। इसी तरह से यम और शातातप के नाम से जो वचन पराशर-भाष्य में माधव ने उद्धृत किए हैं, उनके अनुसार यदि वर कुल और शील से हीन हो, तो कन्या का दूसरा विवाह कर देना चाहिए। पुनर्विवाह के पक्ष में बहुत से ऋषियों के नाम से उद्धृत किए हुए वचन विधवा-विवाह पर लिखी हुई आधुनिक पुस्तकों में पाए जाते हैं—यथा कश्यप, जावालि, अत्रि, गौतम, अगस्त्य, व्याघ्रपात, वृहस्पति, विश्वामित्र, मार्कण्डेय और शौनक। ये वचन पुनर्विवाह का बलपूर्वक समर्थन करते हैं। परन्तु यह कहना कठिन है कि ये वचन किन पुराने ग्रन्थों के आधार पर लिखे गए हैं। मनु, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ गौतम, वौधायन और नारद ने नियोग का विधान किया है। मनु ने विधान लिखकर उसका निषेध भी किया है और वृहस्पति ने इस निषेध का हवाला देकर कलियुग के लिए इसको निषिद्ध समझा है, परन्तु

यह होते हुए भी मनु और बृहस्पति दोनों ने क्षेत्रज लड़के को वित्त और श्राद्ध का अधिकारी माना है। पुनर्विवाह और नियोग दोनों को शास्त्रानुकूल मानते हुए क्रतु मुनि ने दोनों का कलियुग में निषेध किया है। ऋग्वेद और अथर्ववेद की कुछ ऋचाओं से तथा कृष्णयजुर्वेदी तैत्तिरीय-संहिता के मन्त्र से नियोग का प्रचलित होना प्रतीत होता है। अग्निपुराण नियोग और पुनर्विवाह दोनों का उल्लेख करता है। पद्मपुराण में अक्षतयोनि कन्या के पुनः संस्कार का उल्लेख है। आदित्य तथा ब्रह्मपुराण से भी यही पता चलता है कि नियोग और पुनर्विवाह दोनों प्रचलित थे। इन दोनों ने तथा बृहत्नारदीय ने कलियुग में ये निषिद्ध कहे हैं। इसी अर्थ को लिए हुए पराशरमाधव ने आदिपुराण का एक वचन उद्धृत किया है। परन्तु उस वचन का उस पुराण में कहीं पता नहीं है। महाभारत में पुनर्विवाह तथा नियोग के कई प्रमाण मिलते हैं। महानिर्वाण तन्त्र में अक्षतयोनि का विवाह शैव-धर्मानुकूल समझा गया है। कौटिल्य-अर्थशास्त्र में पुनर्विवाह का उल्लेख है। अमरकोष से भी यही सिद्ध होता है कि ग्रन्थ-कर्त्ता के समय में द्विजों में पुनर्विवाह प्रचलित था। कई स्मृतियाँ तथा प्रायः सब गृह्यसूत्र इस विषय के पक्ष या विपक्ष में कोई उल्लेख नहीं करते। जैसा हम आरम्भ में लिख चुके हैं, नियोग के प्रचलित होने में प्रत्यक्ष कठिनाइयाँ हैं। इसीलिए हमें विशेषतः ध्यान पुनर्विवाह पर देना है। इस प्रश्न का फ़ैसला अधिकांश में स्मृतियों पर है और जैसा हम आगे चलकर बतलाएँगे, बड़े-बड़े

स्मृतिकार स्पष्ट-रूप से पुनर्विवाह की आज्ञा देते हैं और जो शङ्काएँ इनके वचनों के बारे में प्रकट की जाती हैं, वे सर्वथा निर्मूल हैं।

अक्षतयोनियों का पुनःसंस्कार ही केवल हमारा अभीष्ट है, परन्तु यह दिखलाने के लिए कि शास्त्रकारों ने वंश के क्षय को बचाने के लिए पुत्र की उत्पत्ति को कितना आवश्यक समझा है, हम अक्षत और क्षत विधवाओं के पुनर्विवाह तथा नियोग के वचनों को भी उद्धृत करेंगे। जब पाठकगण को यह बात भली-भाँति विदित हो जायगी कि नियोग तथा क्षत-विधवाओं का पुनर्विवाह भी शास्त्र-सम्मत है, तो वे अवश्य ही अक्षत विधवाओं के दूसरे विवाह में धर्म-सङ्कट का भय छोड़ देंगे। अब सब से पहले स्वयं मनु महाराज के वचनों को ही लीजिए—

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते॥
सा चेदक्षत योनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥

—मनु० अ० ९, श्लो० १७५, १७६

खेमराज श्रीकृष्णदास जैसे कट्टर सनातनी के छापेख़ाने में छपे हुए तथा कट्टर सनातनी के बनाए हुए धर्मशास्त्र-संग्रह में इन श्लोकों का यह अर्थ दिया हुआ है:—

"जब स्त्री पति के त्याग देने पर अथवा विधवा हो जाने पर अपनी इच्छा से अन्य पुरुष की भार्या बन कर पुत्र उत्पन्न

करती है, तब वह पुत्र पौनर्भव पुत्र कहा जाता है। वह स्त्री पुरुष-सहवास से बच कर यदि दूसरे पति के पास जावे तो दूसरा पति उससे विवाह-संस्कार करे अथवा पति के त्याग देने पर पुरुष के सहवास से बच कर अन्य के घर से अपने पहले पति के पास लौट आवे तो पहला पति उससे फिर विवाह-संस्कार करे, ऐसी स्त्री अपने पति की पुनर्भू पत्नी कही जाती है।"

[नोट—मेधातिथि ने इन वचनों के अर्थ को स्पष्ट समझ कर कोई टीका नहीं की है। कुल्लूक, राघवानन्द तथा सर्वज्ञ-नारायण ने पहले अथवा दूसरे पति के साथ पुनःसंस्कार उपर्युक्त वचन से सिद्ध माना है। राघवानन्द तो एक क़दम आगे जाता है। वह 'गता प्रत्यागता' के पीछे वाली 'वा' अव्यय से क्षतयोनि विधवा का भी पुनर्विवाह सिद्ध करता है और अपने कथन की पुष्टि में याज्ञवल्क्य के वचन का प्रमाण देता है।

'विधवोद्वाहशङ्कासमाधि' में पं० राजाराम शास्त्री को यह मानना पड़ा है कि कन्यात्व के अभाव में भी विवाहिता कन्या का पुनःसंस्कार हो सकता है—यद्यपि आप ऐसी स्त्री को भार्या मानने के लिए तैयार नहीं हैं। अपने मत को प्रकट कर आपने इस बात का भी प्रयत्न किया है कि कोई-कोई पण्डित मनु के वचन से केवल पूर्व-पति के ही साथ पुनःसंस्कार मानते हैं। जिस लचर दलील से आपने इसको साबित करने का प्रयत्न किया है, उसकी पोल उसके पढ़ने से ही विदित हो सकती है।

यदि इस अर्थ को सही मान लिया जाय तो श्लोकोक्त विधवा-स्त्री का भी पूर्वपति से पुनःसंस्कार होना चाहिए, जोकि सर्वथा असम्भव है। पं० परशुराम शास्त्री ने भी 'धर्मशास्त्र-संग्रह' के अनुकूल ही अर्थ लगाए हैं। पं० भीमसेन शर्मा के अनुसार इन श्लोकों से पहले पति के साथ पुनःसंस्कार का अर्थ सिद्ध नहीं होता और ऐसा कहने से वे पं० ज्वालाप्रसाद तथा उन पण्डितों के अर्थ का खण्डन करते हैं, जिनका नाम न लेकर पं० राजाराम शास्त्री ने अपनी पुस्तक में हवाला दिया है। आपके मतानुसार पुनःसंस्करित अक्षतयोनि का दूसरा पति वह होना चाहिए जो स्वयं पुनर्भू अर्थात् दूसरी बार विवाहिता स्त्री का लड़का हो। यह अर्थ थोड़ी देर के लिए भी मानने योग्य नहीं है। यहाँ 'पौनर्भवेनभर्त्रा' में पौनर्भव (पुनर्भूवतीति स्वार्थे अण्) का अर्थ केवल यही है कि जो दूसरी बार पति हुआ हो, और नन्दन को छोड़कर मनु के अन्य प्रसिद्ध भाष्यकारों ने यही अर्थ स्वीकार किया है और अपरादित्य ने याज्ञवल्क्य स्मृति के भाष्य में (२२२ श्लोक—श्राद्धप्रकरण) पौनर्भव के दो अर्थ यानी पुनर्भू का दूसरा पति या लड़का लगाए हैं। यदि पं० भीमसेन का बताया हुआ अर्थ किसी हालत में सही होता तो पूर्व पति के साथ संस्कार नहीं हो सकता था। वसिष्ठ जी ने 'पुनर्भू' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि जो कौमार पति को छोड़ कर दूसरों के साथ रह कर अपने पति के पास लौट आवे वह पुनर्भू होती है, तथा पुनर्भू उस स्त्री का भी नाम है, जो

नपुंसक, पतित, पागल अथवा पति के मरने पर अपना दूसरा पति करती है। यदि शर्मा महोदय का अर्थ ठीक होता तो पुनः संस्कार के लिए पहला पति भी पुनर्भू का लड़का होना चाहिए जोकि सर्वथा हास्यजनक है। इसी प्रकार नारद मुनि के वचनानुसार जो स्त्री कुमार पति को छोड़ कर फिर अपने पहले पति के घर आती है वह द्वितीय श्रेणी की पुनर्भू कहलाती है। यहाँ भी पहले-पति से पुनःसंस्कार होना स्पष्ट है। बौधायन ऋषि भी अक्षत योनि के पुनः संस्कार का विधान बतलाते हुए कहते हैं कि 'पौनर्भवेन विधिना पुनः संस्कार मर्हति' अर्थात् ऐसी कन्या का पौनर्भव विधि से संस्कार होना चाहिए। यहाँ भी नन्दन तथा भीमसेन के 'पौनर्भव' के अर्थ लागू हो ही नहीं सकते। 'विधवोद्वाहशङ्कासमाधि' के ३७ पृष्ठ में 'पौनर्भव' का पुरुषान्तर अर्थ लगाया गया है। वास्तव में जैसा परशुराम शास्त्री बतलाते हैं 'पौनर्भव' शब्द यहाँ यौगिक है—पारिभाषिक नहीं है। पुनर्भू के विधान समाप्ति होने के पहले ही पौनर्भव का इस अर्थ में प्रयोग होना असङ्गत प्रतीत होता है। विधवा-विवाह के खण्डन में मस्त पं० भीमसेन ने एक और विशेषता दिखलाई है। वे विधवा को परित्यक्ता के साथ लेकर 'जो स्वयं पति को त्याग कर विधवा हो गई हो' यह अर्थ लगाते हैं। पक्षपात प्रत्यक्ष है, और कोई टीका की आवश्यकता नहीं है।]

स्मृतिकारों में वसिष्ठ का ऊँचा स्थान है। उनके धर्मशास्त्र का कुछ भाग सूत्र रूप में है और इसी से इसकी प्राचीनता

स्पष्ट है। मनुस्मृति के ८ अध्याय के ४० श्लोक से विदित होगा कि मनुस्मृति के लिखने के समय वसिष्ठ का नाम विख्यात था। (मनुस्मृति में लिखा है कि वसिष्ठ के कथनानुसार अमुक सूद लेना चाहिए और यही दर वसिष्ठ-स्मृति में भी पाई जाती है।) सत्रहवें अध्याय में अक्षत-योनि के विषय में आपका यह वचन पाया जाता है :—

पाणिग्राहे मृते बाला केवलं मन्त्र संस्कृता।
सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति ॥ ६६ ॥

यहाँ भी खेमराज श्रीकृष्णदास के छापेख़ाने में छपी हुई 'धर्मशास्त्रसंग्रह' से अर्थ उद्धृत करते हैं—

"कन्या का पाणिग्रहण मन्त्रपूर्वक हुआ होवे, किन्तु पति से उसका सहवास होने से पहले ही उसका पति मर जावे, तो दूसरे वर के साथ उसका विवाह कर देना चाहिए।"

[नोट—अर्थ बिलकुल स्पष्ट है, पर यहाँ भी पण्डित भीमसेन शर्मा जी एक अनोखी बात कहते हैं। आपके अनुसार इस श्लोक का अर्थ यह है कि पाणिग्रहण तक मन्त्रों से संस्कार हो गया हो, पर सप्तपदी न हुई हो तो अक्षत योनि कन्या का पुनर्विवाह हो सकता है। पण्डित जी से कोई पूछे कि यदि विवाह अपूर्ण ही होता तो योनि के क्षत होने की क्या आशङ्का थी अथवा विधवा को अक्षत लिखने की क्या आवश्यकता थी।] इस श्लोक के बाद ही मुनि ने यह निर्धारित किया है कि नियोग करने के पहले कब तक स्त्री अपने परदेशी पति

के लौटने की प्रतीक्षा करे। इसके अतिरिक्त 'मदनपारिजात', 'पुरुषार्थचिन्तामणि' और 'स्मृतितत्त्व' में वसिष्ठ के नाम से जो वचन उद्धृत किया गया है, उससे ज्ञात होता है कि पति के नपुंसक, पतित, विधर्मी, रोगी, अपस्मारी, वेषधारी, सगोत्री होने की दशा में भी विवाही कन्या दूसरा विवाह कर सकती है। 'पुरुषार्थचिन्तामणि' (पृष्ठ ५७१) से और भी स्पष्ट है। 'पतित' शब्द से विवाह के पश्चात् पतित हुए पति से अभिप्राय है। 'विधवोद्वाहशङ्कासमाधि' (पृष्ठ ४०) में 'मृते' के स्थान में 'अमृते' पाठ मानने की एक अनोखी चाल चली गई है। यहाँ जो श्लोक का अर्थ किया गया है, उससे कन्या के तीन विवाह सिद्ध होते हैं—पहला तो अपने पति के साथ, दूसरा अन्य किसी पुरुष के साथ जिसने पहले पति के जीवित रहते हुए मन्त्रपूर्वक उस कन्या के साथ विवाह कर लिया हो और तीसरा अपने पूर्व-पति के साथ पुनःसंस्कार, यदि दूसरे पति के साथ सहवास न हुआ हो। इस विलक्षण अर्थ की टीका करना ही व्यर्थ है।

लघुशातातप स्मृति में लिखा है—

> उद्वाहिता च या कन्या न संप्राप्ता च मैथुनम्।
> भर्त्तारं पुनरभ्येति यथा कन्या तथैव सा ॥ ४४ ॥
> समुद्गृह्य तु तां कन्यां सा चेदक्षतयोनिका।
> कुलशीलवते दद्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ ४५ ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास के 'धर्मशास्त्रसंग्रह' में इसका अर्थ इस प्रकार दिया हुआ है—

"जिस कन्या का विवाह हो चुका हो; किन्तु पति से सहवास न हुआ हो वह (पति के मर जाने पर) दूसरा पति प्राप्त करे, क्योंकि वह अविवाहिता कन्या के समान है ॥ ४४॥ महर्षि शातातप ने कहा है कि यदि ऐसी कन्या पति के सहवास से बची होवे तो उसको ग्रहण करके कुलीन और शीलवान् पुरुष के साथ विवाह कर देना चाहिए ॥ ४५ ॥" (पहला श्लोक कहीं-कहीं नारद के नाम से भी उद्धृत किया गया है।)

'पराशरमाधव' में शातातप का उद्धृत किया हुआ वचन भी सुनिए—

वरश्चेत् कुल-शीलाभ्यां न युज्येत कथञ्चन।
न मन्त्राः कारणं तत्र नच कन्याऽनृतं भवेत् ॥
समाच्छिद्य तु तां कन्यां बलादक्षत योनिकाम्।
पुनर्गुणवते दद्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥

—पृष्ठ ४९१

अर्थात्—यदि वर कुलशील से युक्त न हो, तो न मन्त्र कारण है और न कन्यात्व नष्ट होता है। उस अक्षतयोनि कन्या को बलपूर्वक उस अयोग्य वर से छीन कर गुणवान् को दे देना चाहिए—यह शातातप का मत है। माधवाचार्य के अनुसार ऋषि यम की भी ऐसी ही आज्ञा है।

[नोट—दोनों श्लोकों में 'अक्षतयोनि' शब्द का उल्लेख है। जिससे यह स्पष्ट है कि विवाह होने के बाद कन्या पति के घर आई गई हो। यहाँ वाक्दत्ता के अर्थ कदापि सङ्गत नहीं हो सकते,

और 'विधवोद्वाहशङ्कासमाधि' में पं० राजाराम शास्त्री का प्रयत्न निष्फल है।]

यह सर्व-सम्मत है कि बौधायन एक बड़े प्राचीन शास्त्रकार हुए हैं। बौधायन धर्मशास्त्र (४, १, १६) से हम निम्न-लिखित वचन उद्धृत करते हैं:—

निसृष्टायां हुतेवापि यस्यैभर्ता म्रियेतसः।
सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागता सती।
पौनर्भवेन विधिना पुनः संस्कार मर्हति ॥ १६ ॥

अर्थात्—"विधिपूर्वक विवाह हो जाने पर कन्या का पति मर जाय तो यदि वह पति के सहवास से बच कर अपने पिता के घर चली आए, तो पौनर्भव विधि से उसका दूसरा विवाह-संस्कार कर देना चाहिए।"

नारद मुनि ने तीन तरह की पुनर्भू और चार तरह की स्वैरिणी स्त्रियों का उल्लेख किया है और उन सब में, अक्षतयोनि को सबसे उच्च श्रेणी की पुनर्भू माना है। यथा—

कन्यैवाक्षतयोनिर्या,
पाणिग्रहण दूषिता ॥ ४६ ॥
पुनर्भू प्रथमा प्रोक्ता पुनः संस्कार मर्हति × × ×

× × ×

अक्षता विधवा के पुनः संस्कार की विष्णु भी आज्ञा देते हैं। यथा-

अक्षता भूयः संस्कृता पुनर्भूः।

—विष्णुस्मृति अ० १५

विष्णुस्मृति की केशववैजयन्ती नाम्नी टीका में इसकी व्याख्या करता हुआ नन्द पण्डित लिखता है—'अक्षता संस्कार मात्र दूषिता पुनः संस्कृता चेत्पुनर्भूः।' केवल संस्कार से दूषित अक्षता पुनः संस्कार की हुई पुनर्भू है।

अब तक भी याज्ञवल्क्यस्मृति अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखी जाती है और सरकार ने भी इसी स्मृति की मिताक्षरा टीका को हिन्दुओं के लिए अधिकांश में माननीय समझा है। पुनर्भू और स्वैरिणी में भेद दिखलाते हुए ऋषि लिखते हैं—

अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः।
स्वैरिणी या पतिंहित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत् ॥

—३-६७

अर्थात्—"अक्षता हो वा क्षता, जिसका पुनः संस्कार हुआ है पुनर्भू है, जो पति को छोड़कर काम से किसी सवर्ण का आश्रय ले, वह स्वैरिणी है।"

मनोदानानन्तरं वा वाग्दानानन्तरं वा कन्या अन्यस्मै अनापदि न दातव्या, दत्ताचेत् दाता चोरवत्दण्ड्यः। एवमेव अग्निं परिगता सप्तपदंगता कन्या अनापदि नान्यं आश्रयेत। आश्रिताचेत् जारिणी भवति। इति सर्वे ऋषयः वदन्ति। आपदितु पूर्वोक्ताः चतुर्विधाः कन्या अक्षतयोनयः पुनः दानयोग्या भवन्तीति केचित् ऋषयो वदन्ति। आपद्यति ताः दानयोग्याः न भवन्तीति केपि न वदन्ति। ताश्चेत् अक्षतयोनयःस्युः विवाह संस्कार योग्या इति च बहवः ऋषयः वदन्ति। केपि ऋषयः ताः संस्कारयोग्या इति न वदन्ति। यतः पुरुषसंयोगानन्तरमेव ताः भर्तुः गोत्रं आश्रयन्ते न

तत्पूर्वमिति मन्वादिवचनैः अवगम्यते । अतः अक्षतयोनयः पितृगोत्रं भर्तृसंसर्गात् पूर्वं न विसृजन्ति । अतः ताः दानयोग्या इति वक्तुं शक्यन्ते । दानयोग्या दान वा दिधिपुणा पाणिगृहीतुं ताः योग्या एव । तासां सन्ततयः अदुष्टाः पौनर्भवाः संस्कृतमातृजातत्वात् ॥

—भृगुसंहितायां तृतीयोध्यायः

इन वचनों को दीवान बहादुर रघुनाथराव ने भृगुसंहिता से उद्धृत किया है। अर्थ स्पष्ट है। सार यह है कि अक्षतयोनि कन्या पुनःसंस्कार के योग्य है और संस्कार होने के कारण उनकी सन्तान दोषरहित है। कन्यादान हो या न हो, पर उनका पाणि-ग्रहण अवश्य हो सकता है।

पद्मपुराण में अक्षतयोनियों के पुनर्विवाह की स्पष्ट आज्ञा पाई जाती है :—

विवाहोजायते राजन् कन्यायास्तु विधानतः ।
पतिर्मृत्युं प्रयात्यस्या नोचेत्सङ्गं करोति च ॥
महाव्याध्यभिभूतश्च त्यागं कृत्वा प्रयाति वा ।
उद्वाहितायां कन्यायामुद्वाह क्रियते बुधैः ॥

—पद्मपुराण भूमिखण्ड अ० ८५

अर्थात्—"हे राजन्! बिना समागम किए ही जिस कन्या का पति मर जाय उसका विवाह होता है। जिसका पति असाध्य रोग में ग्रस्त हो या जो अबला को निराश्रित छोड़कर चला गया हो, उस विवाहिता का भी विवाह होना चाहिए।"

ब्रह्मपुराण से विदित होता है कि पहले विधवाओं के

पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी, और इस पुराण का हवाला हम आगे चलकर भी देंगे। यहाँ केवल एक श्लोक ही देते हैं, जिससे बाल-विधवा का पुनः संस्कार प्रकट होगा—

यदि सा बालविधवा बलात्त्यक्ताऽथवा क्वचित् ।
तदा भूयस्तु संस्कार्या गृहीता येन केनचित् ॥

अर्थात्—"यदि कन्या बाल-विधवा हो या किसी ने निकाल दिया हो, तो जो पकड़ ले वह उसके साथ पुनः संस्कार कर सकता है।"

आगे चल कर पुनर्विवाह को कलियुग में वर्जित किया है। पाराशरस्मृति की अपेक्षा, जिसमें कलियुग का धर्म वर्णन किया है, कहाँ तक माननीय है, यह हम आगे चल कर कहेंगे।

बृहन्नारदीयपुराण, आदित्यपुराण, हेमाद्रि तथा क्रतुस्मृति से पुरातन समय में पुनर्विवाह की प्रथा का प्रचलित होना साबित है। पर कलियुग में इसको वर्जित किया है। इस निषेध की पड़ताल आगे चल कर की जावेगी। हेमाद्रि में उद्धृत देवल के वचन से यह विदित होता है कि अक्षत योनियों के पुनर्विवाह में कोई बाधा नहीं थी।

महानिर्वाणतन्त्र में अक्षत योनियों के पुनर्विवाह की सम्मति बहुत स्पष्ट रूप से दी गई है—

परिणीता न रमिता कन्यका विधवा भवेत् ।
साप्युद्वाह्या पुनःपित्रा शैवधर्मेष्वयं विधिः ॥

—महानिर्वाणतन्त्र उल्लास ११, पद्य ६७

शास्त्रकारों ने केवल अक्षत योनियों के पुनर्विवाह रूपी आपद्धर्म का विधान नहीं किया, परन्तु विशेष परिस्थिति में क्षत तथा अक्षत दोनों प्रकार की विधवाओं को इस आपद्धर्म की आज्ञा दी है। परन्तु स्मृतियों के वचनों को उद्धृत करने के पहले हम वेदों से कुछ प्रमाण देंगे, जिससे यह विदित हो जायगा कि प्राचीन समय में ही नहीं, वरन् प्राचीन कल्प में भी विधवा-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। पहला प्रमाण अथर्ववेद का इस भाँति है :—

या पूर्वं पतिं वित्वाऽथान्यं विन्दते परम्।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वियोषतः॥
समान लोको भवति पुनर्भुवाऽपरः पतिः।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणा ज्योतिषं ददाति॥

—अथर्ववेद का० ९, अनुवाक ३, सूक्त ५, मं २७-२८

सायणकृत पदच्छेद :—

यापूर्वं पतिं वित्वा अथ अन्य विन्दते परम्। पञ्चौदनं च तौ अजं ददातः न वियोषतः। समान लोकः भवति पुनर्भुवः अपरः पतिः यः अजंपंञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति॥

भाषानुवाद—जो पहले पति को प्राप्त होकर तदनन्तर दूसरे पति को प्राप्त होती है, वे दोनों पञ्चौदन दान को देते हुए नियुक्त नहीं होते। विधवा का दूसरा पति एक ही लोक में रहता है, जो दक्षिणा की ज्योति वाले अजपञ्चौदन दान को देता है। यहाँ यह बतलाया है कि पुनर्विवाह कोई घृणित कार्य नहीं है, और जो

पुरुष विधवा से पुनर्विवाह करता है, उसका पद किसी प्रकार अन्य पुरुषों से कम नहीं समझा जाता। दूसरा प्रमाण अथर्व-वेद से लेते हैं :—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उपत्वा मर्त्यं प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥

—अथर्ववेद, काण्ड १८, सूक्त ३, मन्त्र १; तैत्तिरीयअ० ६,१,१३

अथर्ववेद और तैत्तिरीय-संहिता के पाठ में अन्तर बहुत कम है, इसलिए हमने मन्त्र को एक जगह ही उद्धृत कर दिया है।

सायण भाष्य—हे (मर्त्य) मनुष्य! या (नारी) मृतस्य तव भार्या, सा (पतिलोकं) (वृणाना) कामायमाना (प्रेत, मृतं, त्वां, उपनिपद्यते) समीपे नितरां प्राप्नोति। कीदृशी (पुराणं, विश्वम्) अनादि काल प्रवृत्तं कृत्स्नं स्त्रीधर्मं (अनुपालयन्ती) अनुक्रमेण पालयन्ती (तस्यै) धर्म पत्न्यै त्वं इह लोके निवासार्थं अनुज्ञां दत्वा (प्रजाम्) पुत्रादिकं (द्रविणम्) धनञ्च (धेहि) सम्पादय।

भावार्थ—हे मनुष्य, यह जो मरे पति की स्त्री तेरी भार्या है, वह पतिलोक या पतिगृह की कामना करती हुई मरे पति के उपरान्त तुझको प्राप्त होती है। कैसी है वह? अनादि काल से पूरे स्त्री-धर्म को क्रम से पालती हुई। उस धर्मपत्नी के लिए तू इस लोक में निवास की आज्ञा देकर पुत्रादि सन्तान और धन की प्राप्ति करा।

यहाँ सायण का ऐसी स्त्री के लिए 'धर्मपत्नी' शब्द प्रयुक्त

करना, जिसने अपने पहले पति के मरने पर दूसरा विवाह किया है, उनके विधवा-विवाह के पक्ष को सिद्ध करता है।

अथर्ववेद तथा तैत्तिरीय-संहिता के दूसरे मन्त्र से विधवा-विवाह और भी स्पष्ट हो जाता है :—

उदीर्ष्वनार्यभि जीव लोकं मितासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्त्वमेतत् प्रत्युर्जनित्वमभि संबभूव ॥

—अथर्ववेद, का० १८, सूक्त ३, मन्त्र २; तैत्तिरीय संहिता ६, १, १४

सायणकृतभाष्यम्—तां प्रतिगतः सव्ये पाणावभिपाद्योत्थापयति देवरःजरद्दासोवा। हे नारि! त्वमितासु गतप्राणमेतं पतिमुपशेषे, उपेत्य शयनं करोपि। उदीर्ष्व अस्मात् समीपात् उत्तिष्ठ जीवलोकं अभिजीवन्तं प्राणिसमूहं अभिलक्ष्य ऐहि आगच्छ। त्वं हस्तग्राभस्य पाणिग्राहवतो दिधिपोः (पुनर्विवाहोच्छोः) पत्युरेतत्जनित्वं जायात्वं अभिसम्बभूव आभिमुख्येन सम्यक् प्राप्नुहि इत्यर्थः।

अर्थात्—"देवर या कोई वृद्ध-सेवक विधवा स्त्री का (जो मृत-पति के पास बैठी हुई है) हाथ पकड़ कर उठाता है और कहता है—हे नारि! तू मरे हुए इस पति के पास बैठी है, यहाँ से उठ और जीवित प्राणसमूह में आ। अब तू हाथ पकड़ने वाले और पुनर्विवाह की इच्छा करने वाले पति के सम्मुख होकर उसके पत्नीत्व को प्राप्त कर।" सायणाचार्य वेद के भाष्यकारों में प्रधान माने जाते हैं और उनके शब्दशः अनुवाद से पत्यन्तर का विधान इतना स्पष्ट है कि सन्देह की कोई गुञ्जाइश ही नहीं

रहती। यही मन्त्र किञ्चित् पाठान्तर के साथ ऋग्वेद में भी आया है। भीमसेन जी के अर्थ को भी सुनिए :—

"उदीर्ष्व नार्यभि०" अत्र पत्यन्तर विधायके मन्त्रेऽर्थस्यापि विवादो नास्ति। हे नारि! त्वं गतासु मृतमेतं पतिमुपशेषे तस्य समीपे शोकेन पतितासि त विहायाभिजीवलोकं जीवन्त प्राणिसमूहमभिमुखीकृत्योदीर्ष्वोत्तिष्ठ। उत्थाय च तव हस्तग्राभस्य पाणिग्रहण कर्त्तुर्दिधिषोर्द्वितीयस्य पत्युरिदं जनित्वं जायत्वं स्त्रीभावमभिसंबभूव।

यह सब होते हुए भी विधवोद्वाहशङ्कासमाधि में इस मन्त्र के अनोखे अर्थ लगाए गए हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि हे नारि, तू यहाँ से उठ और उस दूसरे लोक में जा, जहाँ कि तेरे मृत-पति की आत्मा गई है और वह तेरा पति इस लोक में तुझको विवाह के तुझको भार्या बनाने की इच्छा करता है, इसलिए उसको प्राप्त हो।

व्यास जी ने अपने पिता पराशर के सम्मुख कलियुग के धर्म सुनने की इच्छा प्रकट की और पाराशरस्मृति में कलियुग के धर्म का वर्णन है। दूसरे अध्याय के पहले श्लोक से यह स्पष्ट है कि पाराशरस्मृति में कलियुग में गृहस्थों के धर्माचारों का (जोकि चारों वर्ण और आश्रमों से सम्बन्ध रखते हैं) साधारण रीति से वर्णन किया गया है। पाराशरस्मृति कलियुग के लिए है, यह निम्न-लिखित वचन से और भी स्पष्ट हो जाता है :—

कृतेतु मान्वाधर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः॥
द्वापरे शङ्खलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः।

जहाँ कहीं इस स्मृति का अन्य स्मृतियों से विरोध है, वहाँ इस युग के लिए निस्सन्देह यही स्मृति प्रमाण समझी जायगी। विधवा-विवाह के सम्बन्ध में पराशर मुनि कहते हैं कि—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

अर्थात्—"पति के लापता, मृत, संन्यासी, नपुंसक तथा पतित होने पर—इन पाँच आपत्तिकाल में स्त्रियों के लिए दूसरे पति का विधान है।" नोट—श्लोक का अर्थ स्पष्ट है, परन्तु पण्डितों ने इस श्लोक की विशेष कर 'पतौ' शब्द की बहुत खींचातानी की है और इस बात का प्रयत्न किया गया है कि पराशर मुनि के वचन से पुनर्विवाह सिद्ध नहीं है। 'पति' शब्द का रूप सप्तमी में 'पत्यौ' होता है। बस, इसी व्याकरण की त्रुटि के कारण पण्डित लोग इस श्लोक पर गोला-बारूद बरसाया करते हैं। विस्तार के भय से अधिक न कह कर हम यह बतला देना चाहते हैं कि 'पतौ' आर्षप्रयोग का एक उदाहरण है और स्वयं पराशर मुनि ने इसी शब्द का इसी रूप में अन्य स्थान में प्रयोग किया है, और वहाँ अर्थ इतना स्पष्ट है कि किसी को कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। उदाहरण—

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्तेगते पतौ।
तांत्यजेदपरेराष्ट्रे पतितां पापकारिणीं॥

—अ० १०, श्लोक ३१

अर्थात्—"जो स्त्री अपने पति के त्याग देने पर, पति के कहीं चले जाने पर व पति के मर जाने पर अन्य जार पुरुष से व्यभिचार द्वारा सन्तान पैदा कर लेवे उस पतित पापिनी स्त्री को राजा अपने देश से निकाल कर दूसरे राज्य में भेज देवे।" यहाँ 'पतौ' शब्द के तोड़ने-मरोड़ने की गुञ्जाइश ही नहीं है। इसलिए 'पतौ' (पति इव आचरतीति पतयति; पतयतीति पतिः तस्मिन्) से वाग्दत्ता कन्या का अर्थ निकालना सरासर अन्याय और पक्षपात है। सम्भव यह है कि यह शब्द इस रूप में छन्दःसाम के अभिप्राय से रक्खा गया हो। नारदस्मृति में यह श्लोक इसी रूप में पाया जाता है और वहाँ प्रकरण से अर्थ इतना स्पष्ट है कि क्षण भर के लिए भी सन्देह नहीं हो सकता। अग्निपुराण (अ० १५४) में भी यह श्लोक आया है और वहाँ इसका कोई दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता, क्योंकि इस श्लोक के बाद तीसरे पद में ये शब्द और आते हैं—

देवराय मृते देया तदभावे यथेच्छया।

अर्थात्—"पति के मर जाने पर देवर को देनी चाहिए और उसके अभाव में इच्छानुसार किसी दूसरे को।" जैनियों के ग्रन्थों में भी यह श्लोक निम्नलिखित रूप में पाया जाता है जिससे रही-सही किञ्चित् शङ्का का भी शेष होता है :—

पत्यौ प्रव्रजिते क्लीवे प्रनष्टे पतिते मृते।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

प्रसिद्ध भाष्यकार माधवाचार्य ने पाराशरस्मृति की चौदवीं

सदी में टीका की और उन्होंने भी इस श्लोक को पुनर्विवाह के अर्थ में समझा है। 'निर्णयसिन्धु' के ग्रन्थकर्त्ता ने भी यही अर्थ लगाए हैं। नारद-स्मृति मनुस्मृति का एक सङ्कलित रूप है, जैसा कि नारदस्मृति से विदित होता है और यह विश्वास किया जाता है कि लुप्त हुए मानव-धर्मसूत्र में यह श्लोक मौजूद था। जो कुछ हो, माधवाचार्य तथा कई प्रसिद्ध ग्रन्थकारों ने इस श्लोक को मनु का मानकर निम्नलिखित रूप में उद्धृत किया है :—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते तथा।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पितरन्योविधीयते॥

वृहस्पतिस्मृति मानवधर्मशास्त्र का वार्त्तिक समझना चाहिए, और गौतम-धर्मसूत्र के मस्करि भाष्य में पाराशरस्मृति के तद्-वत् रूप में ही यह श्लोक वृहस्पतिस्मृति का कह कर उद्धृत किया गया है। कृष्णाचार्यस्मृति में भी यह श्लोक याज्ञवल्क्य ऋषि के नाम से उद्धृत किया गया है। महाभारततात्पर्यनिर्णय के चौथे अध्याय (दशम् श्लोक) में चेट्टिकोनेर्याचार्य्य ने इस श्लोक को इसी भाव में उद्धृत किया है। तात्पर्य कहने का यह है कि पराशर मुनि का यह श्लोक सर्वत्र पुनरुद्वाह के अर्थ में ही समझा गया है।

कोई-कोई 'विधीयते' की जगह 'अवधीयते' पढ़ते हैं। यह इतना ऊटपटाँग पाठ है कि इस पर टिप्पणी करने की कोई आवश्यकता नहीं है। माधवाचार्य ने आदिपुराण के निम्न-

लिखित वचन को उद्धृत करते हुए पुनर्विवाह को कलियुग के लिए निषिद्ध समझा है :—

> ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा ।
> कलौ पञ्च न कुर्वीत भ्रातृजायां कमण्डलुम् ॥

प्रथम तो जैसा भट्टोजी दीक्षित ने चतुर्विंशतिस्मृति की व्याख्या में बतलाया है कि पाराशरस्मृति कलियुग के लिए है और इसलिए पुनर्विवाह को युगान्तरीय धर्म कहना ठीक नहीं है। दूसरी बात यह है कि न तो आदिपुराण की १८ महापुराणों में गिनती ही है और न यह वचन उस पुराण में पाया ज़ाता है। यदि इस वचन को मान भी लिया जाय, तब भी पराशर के वचन को काट नहीं सकता। कारण यह है कि पराशर का विधान विशेष विधान है, और आदिपुराण का सामान्य निषेध इन पाँच अवसरों के अतिरिक्त अन्य अवसरों पर लागू हो सकता है। इसके अतिरिक्त स्मृति और पुराण के परस्पर विरोध होने पर स्मृति का वाक्य ही माननीय होगा (यथा व्यास—श्रुतिस्मृति पुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते। तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोर्द्वैधेस्मतिर्वरा)

पराशर ने विधवा स्त्रियों के ब्रह्मचर्य की बड़ी प्रशंसा की है, परन्तु व्यभिचार इत्यादि को रोकने के लिए पाँच हालतों में आपद्धर्म का विधान किया है। 'विधवोद्वाहशङ्कासमाधिः' में भरसक इसके अर्थ को पलटने की कोशिश की गई है, परन्तु

उल्लेखनीय केवल दो हैं। अर्थात् 'पतौ' से वाग्दत्ता कन्या का अर्थ है और 'पुनर्विवाह कलियुग में वर्जित है' इन दोनों का जवाब हम ऊपर दे चुके हैं। एक विलक्षण तर्क का भी प्रयोग किया गया है, वह उल्लेखनीय है। 'नष्टे मृते इत्यादि' से पति को मरा या लापता हुआ न समझना चाहिए, यहाँ केवल मृत्यु आदि की सम्भावना के अर्थ हैं, अर्थात् जहाँ कन्या के विधवायोगादि से पति की मृत्यु की सम्भावना हो, वहाँ उसका पहला विवाह घड़े से कर देना चाहिए और दूसरा विवाह यथेष्ट पति से कर देना चाहिए!

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि बृहत्पाराशर-संहिता में इस पुनर्विवाह का निषेध है, और इसलिए पाराशरस्मृति का यह वचन माननीय नहीं हो सकता। बहुतों का यह भी संशय है कि दोनों स्मृति एक ही ऋषि की बनाई हुई हैं और इसी भ्रम से अपने पक्ष को बलवान् समझते हैं। बृहत्पाराशर ने पुनर्विवाहिता स्त्री के घर का भोजन निषिद्ध कहा है। यदि कलियुग में विधवा-विवाह प्रचलित न होता तो पुनर्विवाहित के अन्न-भक्षण का निषेध भी न रहता। यदि सम्भावना ही न थी तो उसके अन्न के भक्षण के निषेध की आवश्यकता ही क्या थी? दूसरी बात यह है कि यह दोनों स्मृतियाँ एक ग्रन्थकर्त्ता की बनाई हुई हो नहीं सकतीं। पाराशर-संहिता पराशर मुनि की स्वयं बनाई हुई है। दूसरी संहिता सुव्रत नामक एक पुरुष ने सङ्कलित की है। पाराशरस्मृति के अनुसार जाति-कर्म आदि

संस्कारों से रहित होकर सन्ध्योपासना-शून्य नाममात्र ब्राह्मण को दश अशौच लगता है। वृहत्पाराशर-संहिता दश की जगह बारह दिन के शौच का विधान करती है। पाराशरस्मृति में लिखा है कि यदि दश रात्रि बीतने पर अशौच की ख़बर मिले तो विदेश में बैठा व्यक्ति तीन रात्रि में शुद्ध होता है; और यदि एक वर्ष बाद सुने तो उसी समय स्नान करे। वृहत्पाराशर-संहिता के अनुसार विदेश में बैठा व्यक्ति दश दिन में जन्माशौच और मरणाशौच की बात सुन ले तो शेष दिन अशौच रक्खे, क्योंकि दश दिन के बाद तत्काल शौच हो जाता है। युद्ध में यदि क्षत्रिय मारा जावे तो एक रात्रि में और वृहत्पाराशर के अनुकूल तत्काल शुद्धि होती है। यदि दोनों ग्रन्थों का एक रचयिता होता तो ये भेद कदापि न पाए जाते। इसके अतिरिक्त माधवाचार्य, वाचस्पति मिश्र, शूलपाणि, हेमाद्रि इत्यादि के रचे हुए ग्रन्थों में वृहत्पाराशरसंहिता की गन्ध भी नहीं पाई जाती। जिससे यह सिद्ध है कि यह ग्रन्थ पाराशरस्मृति के बहुत बाद का बनाया हुआ है। पाराशरस्मृति में श्राद्धशान्ति, ध्यानयोग, दानधर्म, आश्रमधर्म आदि विषयों का कोई उल्लेख नहीं है और वृहत्पाराशर ने इनका विशेषरूप से निरूपण किया है। यदि वृहत्पाराशरसंहिता केवल पाराशरसंहिता का सङ्कलित रूप होता तो अधिक विषयों का आना असम्भव था। पाराशरस्मृति में आश्रमों के धर्मों का उपदेश न पाकर माधवाचार्य ने अन्य ऋषियों की संहिता से सङ्कलन करके इस धर्म का वर्णन

किया है। यदि उनके समय में बृहत्पाराशर-संहिता उपलब्ध होती तो इसका हवाला अवश्य देते।

पराशर और नारद ने तो पाँच ही अवस्थाओं में पत्यन्तर की आज्ञा दी है, परन्तु कात्यायन सात दशाओं में पुनर्विवाह की आज्ञा देते हैं। यथा :—

स तु यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीव एव वा।
विकर्मस्थः सगोत्रोवा दासो दीर्घामयोपिवा॥
ऊढापि देया सान्यस्मै सप्रावरणभूषणा।

—पराशर भाष्योद्धृत कात्यायन वचन

अर्थात्—"यदि पति अन्य जाति का हो, पतित, नपुंसक अथवा दुराचारी हो, सगोत्र, दास अथवा चिररोगी हो तो ब्याही हुई भी कन्या वस्त्र-आभूषण सहित दूसरे को देना चाहिए।" वचन बहुत स्पष्ट है और पाराशर-भाष्य में माधवाचार्य ने भी यही अर्थ लगाए हैं। परन्तु राजाराम शास्त्री आदि यहाँ 'ऊढापि' में भी वाग्दत्ता का अर्थ लगाने का वृथा प्रयत्न करते हैं।

'विधवोद्वाहशङ्कासमाधि' (पृष्ठ ८३) में कात्यायन के नाम से निम्न-लिखित श्लोक उद्धृत किया है :—

क्लीबं विहाय पतितं या पुनर्लभते पतिम्।
तस्यां पौनर्भवो जातो व्यक्तमुत्पादकस्य स॥

अर्थात्—"जो स्त्री नपुंसक अथवा पतित पति को छोड़ कर दूसरे पति को प्राप्त करती है, ऐसी स्त्री में पैदा किया लड़का

पैदा करने वाले का होता है।" इस श्लोक से रहा-सहा पक्ष उनका बिलकुल कट जाता है—

कात्यायन ऋषि का एक और वचन भी माधव ने उद्धृत किया है—

वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत्पुरुषो यदा।
ऋत्वागमां स्त्रीनतीत्य कन्यान्यं वरयेत् वरम् ॥

अर्थात्—"यदि कोई पुरुष कन्या को वर कर नष्ट हो जावे तो वह कन्या तीन रजोधर्म के उपरान्त अन्य वर को विवाहे।" [नोट—इस श्लोक के 'वरयित्वा' के 'विवाह करके' अथवा 'सगाई करके' दोनों अर्थ हो सकते हैं, परन्तु यदि सगाई करने का ही अर्थ होता तो तीन रजोधर्म तक कन्या को ठहरने की आवश्यकता नहीं थी। जैसे मुसलमानों में 'इद्दत' समय तक यानी तीन महीने तक कोई स्त्री एक पति को छोड़ कर दूसरे पति के साथ विवाह नहीं कर सकती, वैसे यहाँ भी यह निश्चय करने के लिए कि स्त्री गर्भवती तो नहीं है, तीन महीने तक ठहरना लिखा है।] स्मृति-चन्द्रिका में 'रक्तागमां स्त्रीनतीत्य' ऐसा पाठ है। अगर 'ऋतु' के अर्थ केवल महीने मानते हैं, तो यह नियम निरर्थक-सा मालूम होता है। ऋषियों के वचनों के अनुकूल साधारणतः उसी कन्या को रजोधर्म होगा, जिसका विवाह हो चुका हो।

कुलशीलविहीनस्य प्रपन्नस्य पतितस्य च,

अपस्मारि विधर्मस्य रोगिणोवेशधारिणः।
दत्तामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैव च॥

—स्मृतितत्वधृतवसिष्ठ वचन

जैसा कि हम ऊपर बतला आए हैं 'मदनपारिजाति', 'पुरुषार्थ-चिन्तामणि' और 'स्मृतितत्व' में यह वचन वसिष्ठ मुनि के नाम से उद्धृत किया गया है और इस वचन के अनुसार कुल और शील से हीन, नपुंसक, पतित, अपस्मारी, विधर्मी, रोगी, वेषधारी (बहुरूपिया) और सगोत्र को दी हुई कन्या का हरण कर लेवे।

'ऊढां' शब्द से ब्याही हुई कन्या से अभिप्राय है। 'पुरुषार्थ चिन्तामणि' में 'षण्ढस्य' की जगह 'पश्चादहि' ऐसा पाठ है, जिससे और भी स्पष्ट है कि यहाँ उस पतित से मतलब है जो विवाह के बाद इस दशा को प्राप्त हुआ है।

नारदस्मृति के अनुसार चौदह प्रकार के नपुंसक होते हैं। हम विस्तार के भय से इस सम्बन्ध में केवल पाँच ही श्लोक उद्धृत करते हैं—

तत्राद्यावप्रतीकारौ पक्षाख्यो मासमाचरेत्।
अनुक्रमाद्यस्यास्य कालः संवत्सरः स्मृतः॥१४॥
ईर्ष्यापषण्ढादयो येन्ये चत्वारः समुदाहृता।
त्यक्तव्यास्ते पतितवत्क्षत योन्या अपि स्त्रिया॥१५॥
आक्षिप्तमोघ बीजाभ्यां कृतोपि पतिकर्मणि।
पतिरन्यः स्मृतो नार्या वत्सरार्द्धं प्रतीक्षते॥१६॥

शालीनस्यापि धृष्टस्त्री संयोगाद्भ्रश्यते ध्वजः ।
तं हीनविषयं तु स्त्रीवर्षं क्षिप्त्वान्यमाश्रयेत् ॥१७॥
अन्यस्यां यो मनुष्यः स्यादमनुष्यः स्वयोषिति ।
लभेत सान्यं भर्तारमेतत्कार्यं प्रजापतेः ॥१८॥

आदि के दो षण्ढ स्त्री के लिए ग्रहण करने योग्य नहीं हैं; पक्षषण्ढ की एक मास प्रतीक्षा करे और गुरुशाप षण्ढ आदि तीन की एक वर्ष आसरा देखे। स्त्रियों को चाहिए कि ईर्षा-षण्ढ आदि चार प्रकार के षण्ढों को उनसे प्रसङ्ग हो जाने पर भी पतित के समान त्याग देवे। अक्षिप्त षण्ढ और मोघबीज षण्ढ से यदि विधिपूर्वक विवाह हो गया हो तो ६ महीने तक आसरा देख कर दूसरा पति कर लेवे। प्रबला स्त्री से सम्भोग करने के कारण जिसका कामदेव नष्ट हो गया है, उसको शालीन षण्ढ कहते हैं। ऐसे पुरुष की स्त्री एक वर्ष परीक्षा करके अन्य पति कर लेवे ॥१७॥ जिस पुरुष को अपनी स्त्री से मैथुन करने का सामर्थ्य नहीं होता, परन्तु पर-स्त्री से होता है, ऐसे पुरुष की स्त्री दूसरा पति कर लेवे—ऐसा प्रजापति ने कहा है ॥१८॥ आगे चल कर नारद कहते हैं :—

प्रतिगृह्य चयः कन्यां वरो देशान्तरं व्रजेत् ।
त्रीनृतून्समति क्रम्य कन्यान्यं वरयेद्वरम् ॥ २४ ॥

अर्थात्—"जो पुरुष विवाह करके देशान्तर में चला जाता है उसकी भार्या तीन ऋतुकाल बीत जाने पर दूसरा वर कर लेवे।" ऊपर का अर्थ हमने खेमराज श्रीकृष्णदास के 'धर्मशास्त्र-

संग्रह' से लिया है। कोई-कोई 'प्रतिगृह्य' शब्द से वाग्दान में स्वीकार की हुई कन्या के अर्थ समझते हैं, पर हमारी राय में यह अर्थ मानने योग्य नहीं है। कन्यादान के समय वर 'अहं प्रतिगृह्णामि' इति मन्त्र का उच्चारण करता है। इससे विवाह में स्वीकार की कन्या का अर्थ लेना चाहिए। दूसरे वाग्दत्ता कन्या के लिए तीन ऋतुओं तक प्रतीक्षा करने का कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता। मैक्समुलर के मतानुसार भी यहाँ विवाहिता कन्या का अर्थ समझना चाहिए। बौधायन के वचन से भी विदित होता है कि अपने क्लीव अथवा पतित पति को छोड़ कर स्त्री अपना पुनर्विवाह कर सकती है (२, २, ३-२७)।

भागवत् के वचनों से भी स्त्री पतित पति को छोड़ सकती है, यथा :—

वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले-काले भजेत्पतिम् ॥२७॥
अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ॥२८॥

—७ स्कन्ध, ११ अध्याय

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जड़ोरोग्यऽधनोपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्नहातव्यो लोकेप्सुभिः अपातकी ॥

१०—स्कन्ध, २८ अध्याय

ईरावत नामक नागराज की एक कन्या थी। वह कन्या विधवा हो गई। नागराज ने उसका अर्जुन के साथ विवाह कर दिया और उसी से ईरावान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, और वह अर्जुन का औरस पुत्र होकर विश्रुत हुआ। यह भीष्मपर्व ६१

अध्याय महाभारत की कथा इतनी प्रसिद्ध है कि विस्तार-भय से यहाँ श्लोक उद्धृत नहीं करते। दमयन्ती के दूसरे स्वयम्वर की बात पाठकों से छिपी न होगी। यदि पुनर्विवाह रायज न होता तो दमयन्ती को यह चाल सूझती ही नहीं, और न उसमें कभी उसे सफलता होती। महाभारत आदि पर्व (अध्याय १२०) में पौनर्भव पुत्र को चौथा स्थान दिया है। पुत्रों की गणना के बाद यह श्लोक आते हैं:—

> पूर्वं पूर्वतमाभावं मत्वा लिप्सेत वै सुतं।
> उत्तमाद्देवरात्पुंसः कांक्षन्ते पुत्रमापदि ॥२५॥
> अपत्यं धर्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवाः ।
> आत्मशुक्रादपि पृथेमनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥२६॥

अर्थ स्पष्ट है। औरस इत्यादि पुत्रों की जो संख्या ऊपर के श्लोकों में वर्णन की गई है वे पूर्व पूर्व अपर से श्रेष्ठ हैं। आपत्ति में सन्तान न होने में देवर से पुत्र पैदा कराना श्रेष्ठ है, क्योंकि पुत्र का पैदा करना धर्मफल का देने वाला होता है। पद्मपुराण के भूमिखण्ड (अ०८५) से विदित होगा कि सेतद्वीप के राजा दिवोदास की पुत्री दिव्यादेवी का विवाह ब्राह्मणों की अनुमति से २१ बार हुआ। अमरकोष और कथासरितसागर (तरङ्ग ६६) से भी विधवा-विवाह की प्रथा प्रचलित मालूम होती है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में पुनर्विवाह का विधान विस्तार के साथ तीसरे अधिकरण के चौथे अध्याय में इस भाँति दिया है:—

ह्रस्वप्रवासिनां शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानां भार्याः संवत्सरोत्तरं का

माकांक्षेरन्नप्रजाताः संवत्सराधिकं प्रजाताः। प्रतिविहिता द्विगुणं कालम्। अप्रतिविहिताः सुखावस्था बिभृयुः परं चत्वारि वर्षाण्यष्टौ वा ज्ञातयः। ततो यथादत्तमादाय प्रमुञ्चेयुः। ब्राह्मणमधीयानं दशवर्षाण्यप्रजाता द्वादश प्रजाता राजपुरुषमायुः क्षयादाकाङ्क्षेत। सवर्णतश्च प्रजाता नापवादं लभेत। कुटुम्बर्द्धिलोपे वा सुखावस्थैं विमुक्ता यथेष्टं विन्देत। जीवितार्थ-मापद्गता वा धर्मविवाहात्कुमारी परिगृहीतारमनाख्याय प्रोषितं श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत्। संवत्सरं श्रूयमाणमाख्याय। प्रोषितमश्रूयमाणं पञ्चतीर्थान्याकाङ्क्षेत। दश श्रूयमाणम्। एकदेश दत्तशुल्कं त्रीणि तीर्था-न्यश्रूयमाणम्। श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत। दत्तशुल्कं पञ्चतीर्थान्य श्रूयमाणम्। दश श्रूयमाणम्। ततः परं धर्मस्थैर्विसृष्टा यथेष्टं विन्देत। तीर्थोपराधो हि धर्मवध इति कौटिल्यः। दीर्घप्रवासिनः प्रव्रजितस्य प्रेतस्य वा भार्या सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत। संवत्सरं प्रजाता। ततः पतिसोदर्यं गच्छेत। बहुपु प्रत्यासन्नं धार्मिकं भर्मसमर्थं कनिष्ठमभार्यंवा। तदभावेऽ प्यसोदर्यं सपिण्डं कुल्यं वासन्नम्। एतेषां एष एव क्रमः।

अर्थात्—"यदि थोड़े दिन के लिए पति परदेश गया हो तो चारों वर्ण की सन्तानहीन स्त्री उसकी एक साल तक प्रतीक्षा करे। यदि सन्तान हो तो एक साल से अधिक प्रतीक्षा करे। यदि उसके जीवन के निर्वाह का प्रबन्ध हो, तो ऊपर कहे हुए से दुगने समय तक प्रतीक्षा करे। अगर उनका प्रबन्ध न हो तो उनके खाते-पीते जाति वाले चार या आठ वर्ष तक उनका पालन करें। उसके बाद जाति वाले विवाह के समय दिया हुआ धन वापस लेकर उसको (यदि वह चाहे) पुनर्विवाह की आज्ञा

दें। यदि ब्राह्मण विद्याध्ययन के लिए परदेश गया हुआ हो तो उसकी सन्तानहीन स्त्री दश वर्ष तक प्रतीक्षा करे, यदि सन्तान हो तो १२ वर्ष तक करे। क्षत्रिय की स्त्री अपने पति की जीवन-पर्यन्त बाट देखे। यदि वंश के नाश होने का भय हो तो किसी सवर्ण के साथ विवाह कर ले। सवर्ण के साथ विवाह करने से वह निन्दनीय नहीं समझी जायगी। यदि परदेश गए पति की स्त्री के जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध न हो और उसके सुखावस्थ ज्ञाति वाले उसकी सहायता न करें, तो ऐसी स्त्री को अधिकार है कि वह ऐसे पुरुष के साथ विवाह करले जो उसका पालन कर सके। यदि पति का पता न हो और स्त्री ने पति के नाम की ख्याति न की हो तो ब्राह्म इत्यादि विधान से ब्याही स्त्री अपने परदेश गए हुए पति की सात ऋतुधर्म तक प्रतीक्षा करे। यदि ख्याति की हो, तो एक साल तक प्रतीक्षा करे। जिस पति का पता न हो, तो स्त्री पाँच रजोधर्म तक ठहरे; जिसका पता हो, उसके लिए दश रजोधर्म तक ठहरे। यदि शुल्क का कुछ भाग पा लिया हो और पति का पता न हो तो स्त्री तीन रजोधर्म तक प्रतीक्षा करे; और जिसका पता हो, तो सात रजो-धर्म तक ठहरे। और सब शुल्क पा लिया हो और पता न हो वहाँ पाँच, और पता हो तो दस रजोधर्म तक ठहरे। तदुपरान्त धर्मविदों की आज्ञा से जिससे चाहे उससे विवाह कर ले। क्योंकि कौटिल्य की सम्मति में यदि शुद्ध हुई स्त्री के साथ सहवास न किया जावे तो धर्मवध होता है। जो पति परदेश

चले गए हों, सन्यासी हो गए हों या मर गए हों, तो उनकी सन्तानहीन स्त्री सात रजोधर्म तक ठहरे, और यदि सन्तान हो तो एक साल तक, उसके बाद हरेक ऐसी स्त्री अपने पति के भाई के साथ विवाह कर सकती है। यदि पति के कई भाई हों तो उस भाई के साथ जो पति से छोटा हो या सदाचारी हो या उसे पालने में समर्थ हो या सबसे छोटा हो और अविवाहित हो। अगर देवर न हो तो अपने पति के सपिण्ड तथा कुल के किसी पुरुष के साथ विवाह कर ले।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में विशेष परिस्थिति में पति के त्यागने का भी विधान है। जब स्त्री-पुरुष में द्वेष हो तो एक दूसरे को छोड़ सकते हैं। इसी प्रकार जब पति पतित हो गया हो, परदेश चला गया हो, सन्यासी हो गया हो, राजद्रोही हो गया हो, किसी को मार डाला हो, क्लीब हो गया हो, तो स्त्री ऐसे पति को छोड़ सकती है। यथा—

नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्विषी,
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबोऽपि वा पतिः

—३ अधि, २ अध्याय

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त के समय में विधवा-विवाह की प्रथा प्रचलित थी।

हम आरम्भ में ही कह चुके हैं कि कुछ पुनर्विवाह का समर्थन करने वाले ऐसे वचन मिलते हैं, जिनका धर्मशास्त्र अथवा अन्य पुराने ग्रन्थों से पता नहीं चलता। जहाँ तक मुझे याद है नीचे

लिखे हुए वचनों में से कुछ कविरत्न पं० अखिलानन्द के 'वैधव्य विध्वंसन चम्पू' में पाए जाते हैं, और सम्भव है कि कथाओं के आधार पर उन्होंने स्वयं इनका निर्माण किया हो, हम इन वचनों को अपने पाठकों के परिचय तथा अन्वेषण के लिए नीचे दिए देते हैं:—

१—नष्टे संन्यासमापन्ने व्याधिग्रस्ते च भर्तरि।
पुनः स्त्रीणां विवाहः स्यात्कलावपि न संशयः॥

—अत्रि

(पति के मृत्यु, संन्यास और रोगग्रस्त होने पर कलियुग में भी पुनर्विवाह होना चाहिए।)

२—मरणानन्तरं भर्तुर्यद्यनाहत योनयः।
स्त्रियोविवाहमर्हन्ति नात्र कार्याविचारणा।

—गौतम

(पति के मरने के अनन्तर यदि स्त्री अक्षत-योनि हो तो बिना सोचे उसका विवाह कर देना चाहिए।)

३—पुरुषाणामिव स्त्रीणां विवाहा वहवो मताः।
भर्तृनाशे पुनः स्त्रीणां पुंसां पत्नीक्षए यथा॥

—वैशम्पायन

(पुरुषों के ही समान स्त्रियों के भी पति के न रहने पर अनेक विवाह हो सकते हैं जैसे कि पत्नी के न रहने पर पुरुषों के।)

४—आषोडशवयो नार्यो यदिता मृतभर्तृकाः।
पुनर्विवाहमर्हन्ति न तत्र विशयो भवेत्॥

—कश्यप

(सोलह वर्ष तक यदि स्त्रियाँ पतिहीन हो जायँ तो उनका निस्सन्देह पुनर्विवाह कर देना चाहिए।)

५—ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः स्वकुलयोषिताम्।
पुनर्विवाहं कुर्वरिन्नन्यथा पाप सम्भवः॥

—जाबालि

(चारों वर्ण अपने-अपने वर्ण की स्त्रियों का पुनर्विवाह करें, ऐसा न करने से पाप की सम्भावना है।)

६—भर्त्रभावे वयः स्त्रीणां पुनः परिणयोमतः।
न तत्र पापं नारीणामन्यथा तद् गतिर्नहि॥

—अगस्त्य

(पति के अभाव में विवाह-योग्य स्त्रियों का पुनर्विवाह युक्त है। इसमें कुछ पाप नहीं, न करने में पाप है।)

७—पत्नि नाशे यथा पुंसो भर्तृनाशे तथा स्त्रियाः।
पुनर्विवाहः कर्त्तव्यः कलावपि युगे तथा॥

—व्याघ्रपात्

(पत्नी के अभाव में जैसे पुरुष का, पति के अभाव में वैसे ही स्त्री का कलियुग में भी पुनर्विवाह होना चाहिए।)

८—भर्तृ सम्बन्ध शून्यानां भर्तृनाशेतु योषिताम्।
पुनर्विवाहं कुर्वीत पापं नैव मनागपि॥

—वसिष्ठ

(पति से जिनका सम्बन्ध नहीं हुआ है, पति के न रहने पर उन स्त्रियों का पुनर्विवाह करना चाहिए—इसमें कुछ भी पाप नहीं।)

९—अज्ञात भर्तृ सम्बन्धाभवन्ति यदि योषितः ।
गतप्रिया यदा तासां पुनः परिणयो भवेत् ॥

—बृहस्पति

(जो स्त्रियाँ पति के सम्बन्ध को न जानती हों उनके पति यदि न रहें तो पुनः उनका विवाह होना चाहिए ।)

१०—अस्पृष्ठलिङ्गयोनीनामाविंशति वयः स्त्रियाः ।
पुनर्विवाहः कर्त्तव्यश्चतुर्ष्वपि युगेष्वपि ॥

—विश्वामित्र

(जिनका पति के साथ समागम नहीं हुआ है, ऐसी बीस वर्ष तक की स्त्रियों का चारों युगों में पुनर्विवाह होना चाहिए।)

११—पूर्वंन्निषेकात्नारीणां मृते पत्यौ ततः परम् ।
दशाहाभ्यन्तरे कुर्याद्विवाहन्तु पुनः पिता ॥

—च्यवन

(गर्भाधान से पहले यदि स्त्री का पति मर जाय तो उसका पिता दस दिन के भीतर ही उसका पुनर्विवाह कर दे ।)

१२—निषेकानन्तरं। स्त्रीणांभर्त्तुर्भर्तृत्वमुच्यते ।
पाणिग्रहणमात्रेण न भर्त्ता सर्वयोषिताम् ॥

—मार्कण्डेय

(गर्भाधान के पश्चात् स्त्री का पति कहलाता है, पाणिग्रहण मात्र से पतिसंज्ञा नहीं होती ।)

१३—आगर्भधारणात्स्त्रीणां पुनः परिणयः स्मृतः ।
भर्तृनाशेतु माङ्गल्यं। प्राप्तुमर्हन्ति योषितः ॥

—याज्ञवल्क्य

(गर्भधारण तक स्त्रियों का पुनर्विवाह हो सकता है। पति के मरने पर स्त्रियाँ सौभाग्य को प्राप्त कर सकती हैं।)

१४—गर्भाधानविहीनानां स्त्रीणांकर्माधिकारिता।
भर्तृणां विपर्येणैव म्रियमाणेषु तेष्वपि॥

—शौनक

(जिन स्त्रियों का गर्भाधान नहीं हुआ है, पति के मरने पर उनको विवाह का वैसा ही अधिकार है, जैसा स्त्री के मरने पर पुरुष को।)

अब यह भली-भाँति सिद्ध हो गया है कि विधवा-विवाह की आज्ञा स्मृति तथा पुराण इत्यादि में स्पष्ट रूप से दी गई है। कुछ लोग कहते हैं कि माना कि विधवा-विवाह शास्त्र-सम्मत है, परन्तु पुनर्भू का विवाह अन्य जातीय के साथ ही हो सकता है और शास्त्रकारों ने पौनर्भव को पुत्रों की श्रेणी में बहुत नीचा स्थान दिया है। इस भ्रम को भी दूर करना हमारा कर्त्तव्य है। माना कि मनु ने पौनर्भव को दसवाँ स्थान दिया है, परन्तु याज्ञवल्क्य ने सातवाँ और वसिष्ठ, विष्णु और महाभारत ने चौथा स्थान दिया है। मनु भी (९ अ० १८१ श्लोक) स्पष्ट रूप से कहते हैं कि श्राद्ध आदि क्रियाओं के लोप होने के भय से विद्वान् लोगों ने क्षेत्रज, पौनर्भव इत्यादि ११ प्रकार के पुत्रों को पुत्र का प्रतिनिधि यानी पुत्र माना है। बारह प्रकार के पुत्रों में से मनु पौनर्भव को बान्धव मानते हैं। लेकिन अन्य पुत्रों के अभाव में पौनर्भव पुत्र जायदाद का अधिकारी हो सकता है।

पौनर्भव के होते हुए मृतक के भाई अथवा और सम्बन्धी जायदाद के अधिकारी नहीं हो सकते (श्लोक १८५, अ० ९)। इसी तरह से याज्ञवल्क्य ने मिताक्षरा में ६ तरह के पुत्रों के अभाव में पौनर्भव पुत्र को श्राद्ध और धन का अधिकारी माना है (दायविभाग प्रकरणं ८—१३२)। हम ऊपर कह चुके हैं कि वसिष्ठ ने पौनर्भव को चौथा स्थान दिया है (श्लोक १६, अध्याय १७) और इसको दायाद और बान्धव तथा बड़े भय से बचाने वाला माना है (श्लोक २५)। विष्णु और वृहत्‌विष्णु ने भी चौथा स्थान देकर पौनर्भव को दायाद और बान्धव माना है (श्लोक ७, २८, २९ अध्याय १५)। नारद स्मृति के अनुसार भी यद्यपि पौनर्भव बान्धव है तथापि अन्य श्रेष्ठ पुत्रों के अभाव में यह अपने पिता की जायदाद का अधिकारी हो सकता है (अध्याय १३, श्लोक ४९) और दूसरी श्रेणी के ६ पुत्रों में इसे सबसे ऊँचा स्थान दिया है (श्लोक ४६)।

जैसा कि शास्त्रों में लिखा है, स्त्री पुनःसंस्कार होने पर पुनर्भू कहलाती थी, तब यह सम्भव न था कि इसका सवर्ण के साथ विवाह न होता हो। पौनर्भव की व्याख्या मिताक्षरा ने यों की है—

पौनर्भवस्तु पुत्रोऽक्षतायां क्षतायां वा पुनर्भ्वां सवर्णादुत्पन्नः।

अर्थात्—"क्षत-अक्षत विधवा से सवर्ण से जो पुत्र उत्पन्न हो उसका नाम पौनर्भव है।" याज्ञवल्क्य के १३३ श्लोक के इस पद से—'सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मयाविधिः'—यही बात सिद्ध होती है। यही नहीं, याज्ञवल्क्य ने स्वैरिणी का पति भी

सवर्ण बतलाया है (प्रकरण ३, श्लोक ६७)। नारद के स्वैरिणी और पुनर्भू के वर्णन से यही विदित होता है कि केवल पुनर्भू ही नहीं, स्वैरिणी भी सवर्ण के साथ सम्बन्ध करती थीं। हम यह ऊपर दिखला ही चुके हैं कि सब ऋषियों ने पौनर्भव को बान्धव यानी कुटुम्ब का अङ्ग माना है। पुनर्भू के साथ विवाह करने वाले पति का कर्त्तव्य था कि वह पुनर्विवाहिता स्त्री के पहले पति का ऋण चुकावे (याज्ञवल्क्य ऋणदान प्रकरण, ५१—नारद १-२१)। हम मानते हैं कि मनु, याज्ञवल्क्य, उशना और गौतम श्राद्ध-भोजन में पौनर्भव को निमन्त्रण करने योग्य नहीं समझते हैं, परन्तु वसिष्ठ और विष्णु इनसे सहमत नहीं हैं। धर्मशास्त्रों में श्राद्ध-प्रकरण पढ़ने से विदित होगा कि वास्तव में विरले ही ऐसे ब्राह्मण हैं जो श्राद्ध में निमन्त्रण करने योग्य हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—वेतन देकर पढ़ने वाले तथा वेतन लेकर पढ़ाने वाले ब्राह्मण को मनु श्राद्ध-भोजन का अधिकारी नहीं समझते। गौतम पिता की बिना इच्छा धन बाँट कर अलग रहने वाले पुत्र को, राजा के दूत को, तथा वाणिज्य से आजीविका करने वाले को त्याज्य समझते हैं। इसी तरह से उशना वैद्य, पुजारी तथा रसोईदार को श्राद्ध-भोजन के योग्य नहीं समझते। याज्ञवल्क्य पौराणिक को हेय समझते हैं। और मनु, याज्ञवल्क्य इत्यादि किसी प्रकार के नपुंसक को श्राद्ध में भोजन करने की आज्ञा नहीं देते। जिसमें कल्पना मात्र भी दोष हो, वह श्राद्ध में भोजन पाने का पात्र नहीं है। यदि वसिष्ठ तथा विष्णु और इसे

त्याज्य समझते तो भी पौनर्भव को इस कारण हीन समझना अन्याय होता। जैसे पुनर्विवाह करने वाले पुरुष पर थोड़ा-बहुत आक्षेप किया जाता है वैसे ही पुनर्विवाहिता स्त्री ब्रह्मचारिणी विधवा के समान माननीय नहीं समझी जाती। पुनर्विवाह शास्त्रविहित आपद्धर्म है और इसमें कोई त्रुटि नहीं है, और कलियुग के धर्मशास्त्र पाराशरस्मृति ने पौनर्भव को औरस पुत्र ही माना है।

बृहत्पराशर और अङ्गिरा ने पुनर्भू के अन्न को निषिद्ध अवश्य कहा है। जैसा ऊपर कह चुके हैं, ये दोनों ऋषि पुनर्विवाह को आदर की दृष्टि से नहीं देखते, परन्तु अथर्ववेद के नीचे लिखे हुए मन्त्र से यह बात माननीय नहीं हो सकती:—

समान लोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति॥

—अथर्ववेद, काण्ड ९, सूक्त ५, मन्त्र २८

इस मन्त्र के अर्थ हम पहले ही दे चुके हैं। इस मन्त्र का तात्पर्य्य यह है कि पुनर्भू से विवाह करने वाले का पद इस संसार में अन्य पुरुषों से किसी हालत में कम नहीं होता।

कुछ लोग "याज्ञवल्क्य-स्मृति" के अपरार्क भाष्य में से यह दिखलाने का प्रयत्न करते हैं कि "पैठीनसि" और "हारीत" पुनर्भू के पुत्रों का अन्न निन्दनीय समझते हैं और न उनके साथ पंक्ति में बैठने की आज्ञा देते हैं। (देखो याज्ञव० स्मृति आनन्दआश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, अपरार्क टीका पृ० २१

और २४४)। स्वयं याज्ञवल्क्य ने पुनर्भू के पुत्र का अन्न किसी तरह त्याज्य नहीं बतलाया। अब हमें केवल पैठीनिस के वचन की जाँच करनी है। "मिताक्षरा" में यह स्पष्टरूप से दिखला दिया गया है कि "पौनर्भव" सवर्ण का पुत्र होना चाहिए। "पैठीनिस" की कोई स्मृति उपलब्ध नहीं है। जो कुछ थोड़े फुटकर श्लोक उनके नाम से विख्यात हैं उनमें इस आशय का वचन कोई पाया नहीं जाता। इसी तरह से उपलब्ध हारीति-स्मृति में कोई वचन नहीं पाया जाता जिससे सङ्केत मात्र भी यह समझा जावे कि पुनर्भू की सन्तान पंक्ति में भोजन कराने योग्य नहीं है। यदि कदाचित् यह वचन इन ऋषियों ने कहे भी हों तो उपर्युक्त अथर्ववेद के वचन के सामने टिक नहीं सकते।

नियोग के विषय में हम अपने वक्तव्य को बहुत संक्षेप रूप से कहेंगे। कारण यह है कि आजकल इसको चालू करने में बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। सुविधा केवल यही है कि विधवा को मृतक पति और उसके कुटुम्बियों के दिए हुए धन या जायदाद के विषय में किसी झगड़े का डर नहीं है। परन्तु वर्त्तमान स्थिति पर दृष्टिपात करते हुए यह असम्भव सा प्रतीत होता है कि देवर अथवा अन्य सपिण्ड के साथ सम्बन्ध होने के बाद सन्तान का पैदा करने वाला अपने से बड़े की विधवा को माता अथवा अपने से छोटे की विधवा को पुत्री की निगाह से देखे। साथ ही साथ सन्तान की उत्पत्ति के बाद इस सम्बन्ध का विच्छेद न हुआ तो देवर अथवा सपिण्ड की

विवाहिता स्त्री से और विधवा से वैमनस्य होना अनिवार्य है।

ऋग्वेद के निम्न-लिखित मन्त्र को तथा सायणाचार्य के भाष्यानुसार अर्थ को नीचे लिखते हैं :—

कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विनाकुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शयुत्राविधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थआ॥

—ऋग्वेद १०—८—४०—२

अर्थात्—"हे अश्विन देवताओ! तुम दोनों रात में और दिन में कहाँ रहते हो। तुम दोनों को कौन यजमान वेदी में सेवा करने के लिए सम्मुख होता है (यहाँ दो दृष्टान्त दिखाता है) जैसे सोने के स्थान में विधवा स्त्री पति के भाई को और सब मनुष्यों की स्त्रियाँ पति को अभिमुख करती हैं। यहाँ 'देवर' शब्द विवादग्रस्त है। यदि देवर का अर्थ पति का भाई समझा जावे तो इस मन्त्र से नियोग की प्रथा प्रतीत होती है और यदि 'देवर' शब्द से दूसरा पति समझा जावे तो यह मन्त्र पुनर्विवाह का सूचक है।

स्मृतियों के वचन नियोग के बारे में बिलकुल स्पष्ट हैं और विस्तार के भय से हम केवल उनके अर्थ को ही नीचे लिखेंगे :—

नवें अध्याय के ५९ से ६३ श्लोक में मनु ने नियोग का विधान इस तरह लिखा है—"स्त्री को चाहिए कि सन्तान न होवे तो देवर अथवा अन्य सपिण्ड पुरुष से नियुक्त होकर मनोवाञ्छित सन्तान उत्पन्न करे। नियुक्त पुरुष अपने शरीर में घी लगा कर मौन हो रात में विधवा स्त्री से मैथुन करके एक

पुत्र उत्पन्न करे—दूसरा नहीं। स्त्री-तत्व के जानने वाले अन्य आचार्य्य कहते हैं कि एक सन्तान से नियोग का उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए नियोग से दो सन्तान उत्पन्न करना धर्म है। विधवा का नियोग विधिपूर्वक सम्पन्न होने पर छोटे भाई की स्त्री पति के बड़े भाई को गुरु के समान माने और बड़ा भाई छोटे भाई की स्त्री को पतोहू के समान माने। यदि नियुक्त होकर अपनी इच्छानुसार विधि को छोड़ कर छोटे भाई की भार्या से बड़ा भाई, अथवा बड़े भाई की भार्या से छोटा भाई गमन करेगा तो दोनों पतित हो जावेंगे।" उसी अध्याय के १६७ श्लोक में मनु ने क्षेत्रज की व्याख्या करते हुए कहा है कि जो पुत्र धर्मपूर्वक नियुक्त पुरुष के वीर्य से मरे हुए, नपुंसक अथवा असाध्य रोगी पुरुष की स्त्री में उत्पन्न किया जाता है उसे क्षेत्रज कहते हैं।

पहले अध्याय के ६८ और ६९ श्लोक में याज्ञवल्क्य स्मृति में नियोग का यों विधान किया गया है—"हीन स्त्री का देवर सपिण्ड अथवा सगोत्र स्त्री के बड़ों की आज्ञा लेकर अपने शरीर में घी लगा कर पुत्र की इच्छा से उस स्त्री से ऋतुकाल में गमन करे। जब तक गर्भाधान नहीं होवे, तब तक स्त्री से प्रसङ्ग करे; गर्भ रह जाने पर उससे गमन करने से वह पतित होगा; इस भाँति उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहलाता है। गौतम धर्म्मशास्त्र के पहले श्लोक १८ अध्याय में नियोग का इस भाँति आदेश दिया गया है :—

"स्वामी के अभाव में यदि स्त्री को सन्तान की इच्छा

तो देवर अथवा पिण्ड, गोत्र अथवा पति के कुल के किसी पुरुष से ऋतुकाल में सहवास करके सन्तान उत्पन्न करे। किसी आचार्य्य का मत है कि देवर को छोड़ कर अन्य पुरुष से संयोग नहीं करे।"

वसिष्ठ मुनि कहते हैं—"मरे पुरुष की स्त्री छः मास तक खार लवण को छोड़ कर व्रत करे, भूमि पर सोवे, छः माह के बाद स्नान करके पति का श्राद्ध करे। उसके पश्चात् विधवा का पिता अथवा भाई उसके पति के विद्या—गुरु, कर्मगुरु और बन्धुजनों को इकट्ठा करके उनकी अनुमति लेकर सन्तान उत्पत्ति के लिए उसका नियोग करा देवे। यदि वह स्त्री उन्मत्ता, स्वेच्छा-चारिणी, रोगिणी अथवा १६ वर्ष से कम अवस्था की होवे, तो उसका नियोग नहीं करावे और न स्त्री से कम अवस्था के पुरुष के साथ नियोग कराए। नियुक्त पुरुष चार घड़ी रात रहने पर विवाहित पति के समान नियुक्ता स्त्री से सहवास करे। काम-भोग के लोभ से नियोग नहीं है। एक आचार्य्य कहते हैं कि लोभ से नियोग करने वाले को प्रायश्चित्त करना चाहिए।"

—वसिष्ठ स्मृति ४६ से ५८ सूत्र—१७ अध्याय

इस विषय में बौधायन ऋषि का वक्तव्य यों है—"मृत पुरुष की स्त्री एक वर्ष तक मांस, मद्य और नमक को छोड़ कर भूमि पर सोवे मौद्गल्य ऋषि कहते हैं कि ६ महीने तक ऐसा करे। पुत्ररहित स्त्री इसके पश्चात् श्वसुर आदि बड़े लोगों की आज्ञानुसार देवर से पुत्र उत्पन्न करे, वन्ध्या, पुत्रवती, ऋतुहीन, मरे हुए पुत्र की माता

और कामचेष्टा से रहित स्त्री का नियोग कराने से कुछ फल नहीं होता है।"

—बौधायनस्मृति—२ पृष्ठ, २ अ० ।

नारदमुनि ने नियोग का विधान बड़े विस्तृत रूप से दिया है; उसका हम यहाँ केवल सार ही देते हैं। सन्तानरहित स्त्री को चाहिए कि गुरुओं की आज्ञा लेकर पुत्र की कामना से अभिगमन करे; और उसके साथ तब तक सहवास करे जब तक उसके पुत्र पैदा न हो। पुत्र हो जाने के बाद यदि सहवास जारी रक्खा जावे तो पैदा हुआ पुत्र वर्णशङ्कर कहाता है। अपने शरीर में तैल और घी लगा कर गमन करे, परन्तु मुँह से मुँह अथवा और अङ्ग का स्पर्श न हो। सहवास सन्तान के लिए करे न कि काम के लिए; ऐसी स्त्री के साथ गमन न करे जो गर्भवती हो, अथवा सदाचारिणी न हो अथवा जिसके लिए गुरुओं ने आज्ञा न दी हो। यदि ऐसी स्त्री के साथ गमन किया जाय तो वह जार से पैदा हुआ समझा जावेगा और मृत की जायदाद का अधिकारी न होगा।

—नारदस्मृति, १२ अध्याय, श्लोक ८०—८५ ।

मनु ने नियोग का विधान करके द्विजातियों के लिए निषेध भी किया है। वृहस्पति इस निषेध को कलियुग के लिए लागू बतलाते हैं। जो कुछ हो, गौतम, बौधायन, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ और नारद ने कहीं भी सङ्केत मात्र से निषेध नहीं किया है। निषेध करने के बाद भी अन्य ऋषियों के समान मनु ने क्षेत्रज

पुत्र को श्राद्ध तथा जायदाद का अधिकारी माना है। बृहस्पति ने क्षेत्रज को पुत्र तो माना है, परन्तु उसको नीच श्रेणी के पुत्रों में स्थान प्रदान किया है।

मानव धर्मशास्त्र में लिखा है कि—

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युग ह्रासानुरूपतः॥

अर्थात्—"युगानुसार मनुष्य की शक्ति का ह्रास हो जाने के कारण सत्ययुग के धर्म और हैं, त्रेतायुग के धर्म और, द्वापर युग के धर्म और, कलियुग के धर्म और हैं। पाराशरस्मृति के निम्न-लिखित वचन से भी यही सिद्ध होता है—

कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमा स्मृताः।
द्वापरे शङ्खलिखितौ कलौ पाराशराः स्मृताः॥

अर्थात्—"सतयुग में मनुप्रोक्त धर्म, त्रेतायुग में गौतम निरूपित धर्म, द्वापरयुग में शङ्खलिखित धर्म, और कलियुग में पराशर निरूपित धर्म है। यदि प्रत्येक युग में एक ही धर्म माननीय होता, तो समय समय पर अन्य धर्मशास्त्रों की आवश्यकता क्या थी, और मानव-धर्मशास्त्र ही सब समय के लिए पर्याप्त होता? जैसा हम आगे चल कर दिखलावेंगे, समय समय पर धर्म के नियमों में परिवर्तन होता आया है, और इसी कारण समय समय पर नये शास्त्रकारों ने समयानुसार धर्म का निरूपण किया है। यही कारण है कि एक स्मृति दूसरी स्मृति से सब विषयों में सहमत ही नहीं, किन्तु विरोधी भी है। हमारे कुछ

सनातनधर्मावलम्बियों का सर्वदा यही प्रयत्न रहता है कि भिन्न-भिन्न स्मृतिकारों की एकवाक्यता करें। यह प्रयत्न सर्वथा निष्फल है; और यद्यपि वचनों के तोड़ने-मरोड़ने में पाण्डित्य का परिचय मिलता है, पर अर्थ कुछ भी सिद्ध नहीं होता। उदाहरण के लिए हम अपने पाठकगण के सम्मुख कुछ दृष्टान्त रक्खेंगे।

मनु महाराज कहते हैं कि यदि वाग्दत्ता कन्या का पति मर जावे तो स्वेत वस्त्र पहना कर उसका देवर के साथ नियोग कर देना चाहिए (अध्याय ६, श्लोक ६९-७०)। कारण यह है कि मनु के अनुसार वाग्दत्ता कन्या भावी पति के मरने पर विधवा हो गई, और विधवा होने पर वह नियोग के रूप से सन्तान उत्पन्न करा सकती है। मनु के भाष्यकारों ने स्पष्ट कर दिया है कि विधवा कन्या का पुत्र देवर के भाई का ही पुत्र समझा जावेगा। वसिष्ठ के अनुसार यदि वाग्दत्ता कन्या का पति मर जावे तो वह कुमारी कन्या ही रहती है। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि सगाई हो जाने पर यदि पहले वर की अपेक्षा दूसरा अच्छे कुल या शील का हो तो पिता कन्या को दूसरे वर के साथ विवाहे। इसी तरह से गौतम का भी आदेश है कि वचन देने पर भी दूसरे वर को कन्या दी जा सकती है। शातातप और कात्यायन का तो यह आदेश है कि यदि विवाह होने पर भी यह बात मालूम हो जावे कि वर कुल और शील से हीन है तो उससे बलात् पूर्वक कन्या को छीन कर दूसरे वर के साथ विवाह कर देवे। पुत्रों की श्रेणी में मनु ने पौनर्भव को दसवाँ स्थान

दिया है, परन्तु वसिष्ठ, विष्णु और वृहत्विष्णु ने उसको चौथा स्थान देकर जायदाद और श्राद्ध दोनों का अधिकारी माना है। मनु ने बारह तरह के पुत्र माने हैं, जिनमें से औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्तिम, गूढ़ोत्पन्न और अपविद्ध को जायदाद और श्राद्ध का अधिकारी माना है, परन्तु वृहस्पति की राय में केवल औरस पुत्र और मृतक की पुत्रिका ही जायदाद के मालिक हो सकते हैं। जायदाद के अधिकारियों में मनु ने पुत्रिका पुत्र का नाम भी नहीं लिया है, परन्तु वृहस्पति औरस पुत्र के बाद ही उसका नम्बर रखते हैं। मनु के विपरीत वह क्षेत्रज और गूढ़ोत्पन्न को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। मनु ने जुआ खेलना वर्जित किया है (अध्याय ९; श्लोक २२२-२२८) लेकिन जैसा वृहस्पति बतलाते हैं, अन्य शास्त्रकारों ने जुआ खेलने की इस शर्त पर आज्ञा दी है कि जुआ का कुछ भाग राजा को दिया जावे। कश्यप ऋषि के अनुसार मन या वचन से दी हुई कन्या अन्य वर के साथ ब्याही जाने पर पुनर्भू होती है और वह अग्नि के समान कुल को भस्म कर देती है। परन्तु याज्ञवल्क्य, शातातप, कात्यायन, वसिष्ठ इत्यादि इसके बिलकुल विपरीत आज्ञा देते हैं। स्मृतिकारों ने विवाह के लिए भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ उत्तम, मध्यम और अधम समझी हैं। प्रश्न यह है कि ऊपर दिखलाए हुए विरोध में क्या कोई एकवाक्यता सम्भव हो सकती है। भिन्न-भिन्न स्मृतियाँ भिन्न-भिन्न समय में लिखी गई हैं, और समयानुसार ही उनमें धर्म का विधान किया गया है। यथा—

देवल ऋषि ने अपनी स्मृति उस समय लिखी कि जिस समय म्लेच्छों के हमले शुरू हो गए थे और इसलिए ही इसमें शुद्धि का विधान किया गया है। परन्तु मनुस्मृति अथवा अन्य प्राचीन धर्मशास्त्रों में इसकी कल्पना भी नहीं की गई है और इसमें आश्चर्य ही क्या। एक ग्रन्थ में एकवाक्यता सम्भव है, अन्यथा नहीं। सच तो यह है कि एकवाक्यता के पीछे हाथ धोकर पड़ने से पण्डितों ने देश को बहुत क्षति पहुँचाई है। इसी चाल से वे समयानुकूल कोई उपयोगी सुधार नहीं होने देते। समान अर्थकता के बहाने से किसी न किसी ऋषि के वचन पर दोहाई देकर यह लोग उन्नति के पथ में रोड़ा अटकाने में सर्वथा अग्रसर रहते हैं। वेदव्यास ने स्पष्ट रूप से कहा है कि श्रुति और स्मृति के विरोध में श्रुति माननीय है और इसी तरह से स्मृति और पुराण के विरोध में स्मृति का वाक्य शिरोधार्य है, परन्तु एकवाक्यता के हिमायती इस वचन को ताक पर रख देते हैं और यही कारण है कि मनु, याज्ञवल्क्य इत्यादि ऋषियों के विहित पुनर्विवाह को साधारण से साधारण और अर्वाचीन से अर्वाचीन पुराण काटने को पर्याप्त हैं। दलील कितनी लचर हो, पर वाह रे साहस और वाह री सफलता !

विधवा-विवाह के विरोधी कुछ ऐसी शङ्काएँ उपस्थित करते हैं जिनसे भ्रम पैदा होना सम्भव है, अतः हम उन शङ्काओं का समाधान करना यहाँ आवश्यक समझते हैं। सबसे बड़ा आक्षेप यह किया जाता है कि शास्त्रानुसार कन्या का दान एक ही बार

हो सकता है, दूसरी बार नहीं, और इसकी पुष्टि में मनु के निम्न-लिखित श्लोकों का आश्रय लिया जाता है :—

१—सकृदंशोनिपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतांसकृत् ॥४७॥
२—न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ।
दत्वा पुनः प्रयच्छन् हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥
—९-७१

दूसरे श्लोक का तो केवल वाग्दान के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है, और मनु के प्रमुख भाष्यकारों ने प्रसङ्गवशात् यही अर्थ लगाए हैं। पहले वचन से मनु का आदेश अवश्य यह है कि कन्यादान एक ही बार होना चाहिए। इसका अर्थ केवल यही है कि सामान्य रूप से कन्या का एक बार ही दान करना चाहिए। ऋषि ने यह एक सामान्य विधि निरूपित की है जो विशेष परिस्थिति में लागू नहीं हो सकती। यदि ऐसा हो, तो मनु और नारद दोनों पर यह दोष आरोपित होगा कि पुनः-संस्कार की आज्ञा देकर स्वयं ही अपने वचनों का खण्डन किया है। हम प्रतिवादी महाशयों से एक प्रश्न अवश्य पूछना चाहते हैं। अगर पुनःसंस्कार की प्रथा ही न थी तो मनु, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, बौधायन, नारद, शातातप, कात्यायन, पराशर इत्यादि के पुनर्विवाह सम्बन्धी वचनों का क्या अर्थ लगावेंगे? यदि पुनःसंस्कार की प्रथा प्रचलित न थी, तो पुराणों के निषेधात्मक वचनों की क्या आवश्यकता थी? वास्तव में ऐसे वचनों की

पञ्चड़ लगाना बिल्कुल व्यर्थ है। जब शास्त्रों में पुनर्विवाह की आज्ञा स्पष्ट है, तो यह पुनःसंस्कार आज भी वैसे ही होगा जैसे कि प्राचीन समय और प्राचीन कल्प में हुआ करता था। यदि मनु, याज्ञवल्क्य इत्यादि धर्मप्रयोजकों का पुनः संस्कार को अन्य विधि से करने का मन्तव्य होता, तो यह सम्भव नहीं कि इनमें से कोई ऋषि भी इस विधि का निरूपण न करते। इन ऋषियों ने जब कोई विशेष विधि का विधान नहीं किया, तो इसका स्पष्ट अर्थ है कि यह विवाह भी साधारण विवाह के सदृश है और उसी विधि से होना चाहिए।

विवाह के बाद कन्या पति के गोत्र की हो जाती है, और यह शङ्का भी कि ऐसी स्थिति में दान कौन करे और किस गोत्र से करे—निर्मूल है। कन्या का दुबारा दान पिता ही करेगा और विवाह हो जाने से इसमें कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती। कन्यादान के समय कन्या के पिता, पितामह और प्रपितामह के नाम लिए जाते हैं। और पुनर्विवाह में भी इनके नाम पूर्ववत् लिए जा सकते हैं। यह विचार हमारा कपोल-कल्पित नहीं है, शास्त्र में भी स्पष्ट प्रमाण पाया जाता है—

यथा—

अमुष्य पौत्रींञ्चामुष्य पुत्रीञ्चामुष्य गोत्रजाम्।
इमां कन्यां वरायास्मै वयं तद्विवृणीमहे।
शृणुध्वमिति वैब्रूयादसौ कन्याप्रदायकः॥

—वृहद्वसिष्ठसंहिता, चतुर्थ अध्याय

अर्थात्—"सभा में उपस्थित समस्त पुरुषों के समक्ष कन्या का दाता कहता है कि 'आप लोग सुनिए, अमुक की पोती, अमुक की पुत्री, अमुक गोत्र में उत्पन्न हुई इस कन्या को हम इस वर के हाथ दान करते हैं।" इससे स्पष्ट है कि केवल उसी गोत्र का नाम लेना आवश्यक है जिस गोत्र में कन्या पैदा हुई हो।

कन्या का दान अन्य दान के समान नहीं है। यहाँ 'दान' शब्द का प्रयोग रूपक अर्थ में किया गया है। किसी वस्तु के दान से यह दान बिल्कुल भिन्न है। वस्तु पर मालिक का पूरा स्वत्व रहता है, वह चाहे जिस तरह उसका प्रयोग कर सकता है। कन्या के ऊपर उसका अधिकार एक रक्षक की हैसियत से है, यदि पिता अपने स्वार्थ के लिए कन्या के हित-अहित का विचार न करके उसके साथ बुरा व्यवहार करे तो वह दण्डनीय होगा। यदि पिता का स्वत्व पूर्ण होता, तो कन्या किसी अवस्था में स्वयं अपना विवाह कभी कर ही नहीं सकती थी। यदि रज-स्वला होने के तीन साल तक पिता कन्या का विवाह न करे, तो वह राजा के पास जाकर स्वयं अपना वर चुन लेवे। कन्यादान के पश्चात् पिता-माता इत्यादि का (अन्य वस्तु दान के समान) कन्या से सम्बन्ध नहीं टूटता। यदि सम्बन्ध टूट जाता तो न कन्या और न कन्या का पुत्र कभी अपने पिता अथवा नाना की जायदाद का दायाद होता। कन्यादान का स्पष्ट विवरण शुक्ल यजुर्वेद तथा महीधर के भाष्यानुवाद से भली भाँति प्रकट होगा—

भाष्यानुवादः—कौन देता है? किसको देता है? इन दो

प्रश्नों का उत्तर देते हैं। काम देता है और काम को ही देता है, न तू देने वाला और न मैं लेने वाला, तेरी आवश्यकता ने मेरी आवश्यकता को दिया। इसलिए काम ही देने वाला और काम ही लेने वाला है, अन्य कोई नहीं। हे काम! यह वस्तु तेरे लिए है, क्योंकि दाता और प्रतिगृहीता तू ही है।" अधिक कहने की आवश्यकता नहीं कि इस दान और आदान में दाता और गृहीता का सम्बन्ध केवल उपचार मात्र है।

अभी आक्षेपों का अन्त नहीं। मनु के निम्न-लिखित श्लोक का आश्रय लेकर यह साबित करने का प्रयत्न किया जाता है कि विधवा अकन्या है, इसलिए पुनर्विवाह में पाणिग्रहण के मन्त्र लागू नहीं होते :—

पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः।
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः॥

—मनुस्मृति अ० ८, श्लोक २२६

इस वचन को पुनर्विवाह का निषेधक मानना सरासर अन्याय है। इसके पहले श्लोक से 'अकन्या' शब्द का अर्थ बिलकुल स्पष्ट हो जाता है—

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः।
सशतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन्॥

—मनु० अ० ८, श्लोक २२५

इसकी टीका में कुल्लूक भट्ट लिखता है—"जो द्वेष से कन्या को अकन्या कहता है, अर्थात् उस पर व्यभिचार का दोष

लगाता है, वह यदि उसके दोष को सिद्ध न कर सके तो सौ पणों से दण्डनीय है।" मनु का तात्पर्य 'अकन्या' शब्द से उस कन्या का है जो विवाह से पहले व्यभिचारिणी होगई हो, ऐसी स्त्रियों के लिए मनु पाणिग्रहण के मन्त्रों का निषेध करते हैं। ऐसी अकन्याओं को लुप्तधर्म क्रिया कहा है। अर्थात् उनकी सब धर्म-क्रियाएँ लुप्त होगई हैं। अबोध बाल-विधवाओं के लिए यह विशेषण कभी लागू नहीं हो सकता।

हम पहले ही कह चुके हैं कि पुनर्विवाह के समय पिता को विधवा का पुनर्दान करना चाहिए। हमारी गवर्नमेण्ट ने भी १८५६ के विधवा-ऐक्ट की छठवीं धारा में स्पष्टरूप से लिखा है कि "जो मन्त्र और विधान हिन्दू-स्त्रियों के प्रथम विवाह में पढ़े या किए जाते हैं, वे ही यदि हिन्दू-विधवाओं के पुनर्विवाह में बरते जावेंगे, तो वह विवाह क़ानूनन जायज़ समझा जायगा।" यदि धर्मशास्त्रज्ञ कोई दूसरी विधि साबित कर सकते तो सरकार उसे अवश्य स्वीकार करती। विपक्षियों का यह कहना है कि पुनर्विवाह शास्त्रविहित आठ विवाहों के अन्तर्गत नहीं है—निर्मूल है। कुल्लूक भाष्यकार ने अध्याय ८, श्लोक २२६ की टीका करते हुए देवल ऋषि का यह वचन उद्धृत किया है :—

गान्धर्वेषु विवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः।
कर्त्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकः॥

अर्थात्—"गान्धर्व विवाह में पुनर्विवाह की गणना है, तीनों वर्णों को अग्नि के साक्ष्य में करना चाहिए।" यदि अब भी कन्या-

दान में कुछ भी आपत्ति हो तो गान्धर्व-विधि से विवाह हो सकता है। ऐसा करने में कोई अनुचित बात भी नहीं होगी, क्योंकि विवाह में पाणिग्रहण और उसके बाद की विधि वास्तव में महत्व की क्रिया हैं।

तैत्तिरीय-संहिता का वचन उद्धृत कर प्रतिवादी महाशय यह बतलाते हैं कि एक स्त्री के दो पति नहीं हो सकते। वचन इस प्रकार है—

यदेकस्मिन् यूपेद्वेरशने परिव्ययति तस्मादेको द्वे जाये विन्देत।
यन्नैका रशनां द्वयोर्यूपयोः परिव्ययति तस्मान्नैका द्वौ पती विन्देत॥

—तैत्तिरीय संहिता ६-६-४

भाषार्थ—"एक यज्ञस्तम्भ में दो रस्सी बाँधी जाती हैं, इसलिए एक पुरुष दो स्त्रियों को प्राप्त कर सकता है। पर एक रस्सी दो यज्ञस्तम्भों में नहीं बाँधी जाती, इसलिए एक स्त्री दो पति नहीं कर सकती।" इस वचन का अर्थ यह है कि एक समय में स्त्री का एक से अधिक पति नहीं हो सकता, और नीलकण्ठ ने भी ऐसी ही व्याख्या की है—'नैकस्याः बहवः सहपतयः।' ऐतरेय ब्राह्मण में यह मन्त्र पाया जाता है—"तस्मादेकस्य बहवो जाया भवन्ति नैकस्यै बहवः सहपतयः सन्ति" (तृतीयपञ्चिका, दूसरा अध्याय, द्वादश खण्ड)। वीरमित्रयोदय की पथ में तो इस वचन से पत्यन्तर की विधि साबित होती है—'सहशब्द सामर्थ्यात् पत्यन्तरं भवतीति गम्यते' (चौखम्भा-सीरीज़ पृष्ठ ८७१) । इसी तरह से अनेक निर्मूल शङ्काएँ प्रकट की

जाती हैं। जिन शास्त्रों के वचन का आश्रय लिया जाता है उनका केवल यही तात्पर्य है कि सामान्य विवाह में अमुक बात होनी चाहिए। उन्होंने विशेष परिस्थिति के लिए उन वचनों में कोई विधान नहीं किया। कारण यह कि विशेष परिस्थिति के लिए विशेष विधान पृथक् कर दिया है। यदि ऐसा न समझा जावे तो मनु, याज्ञवल्क्य इत्यादि पर अपने ही वचनों के खण्डन करने का दोष आरोपित होता है। हम यहाँ थोड़े ही वचन उद्धृत करते हैं और पाठकगण इसी से समझ लेंगे कि यह शङ्काएँ कितने महत्व की हैं—'कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः। न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु' ॥ मनुः ॥ यहाँ उस विधवा का धर्म बयान किया गया है, जो ब्रह्मचारिणी रह कर अपना जीवन बितावे। इसी तरह से 'मृतेभर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्यें-व्यवस्थिता। स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः' ॥ विष्णुः ॥ अर्थात् जो स्त्री ब्रह्मचारिणी रहे वह स्वर्ग को जाती है। याज्ञ-वल्क्य का वचन लीजिए—'मृते जीवति वा पत्यौ या नान्युमुप-गच्छति। सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह।' इसका तात्पर्य यही है कि पति के मरने या जीने पर जो स्त्री किसी अन्य के साथ सम्बन्ध नहीं करती है उसकी बड़ी कीर्त्ति होती है। यह वचन उसी स्थिति के लिए है जब स्त्री ने पुनर्विवाह न किया हो। साथ ही साथ ऐसा लिखने से शास्त्रकार ने व्यभिचार की निन्दा की है। और यही आशय निम्न-लिखित मनु के वचनों से स्पष्ट होता है

अपत्यलोभाद्यातु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोप दिश्यते ।
भर्तारंलङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता ॥
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंसदि ।

इस तरह से प्रत्येक शास्त्रकार के वचन मिलेंगे, जिनमें या तो सामान्य विधि का वर्णन किया गया है या पातिव्रत्यधर्म की प्रशंसा की गई है। वास्तव में ऋषियों ने विधवाओं के लिए तीन प्रकार के धर्म का निरूपण किया है—(१) पति की चिता पर भस्म हो जाना; यह असाधारण धर्म है। (२) पति की मृत्यु के बाद ब्रह्मचारिणी रहना; यह साधारण धर्म है। (३) पुनःसंस्कार करना, यह आपद्धर्म है।

इसी तरह से कोई-कोई विवाहयोग्या कन्या के लक्षणों से, जो शास्त्रकारों ने दिए हैं, पुनर्विवाह का निषेध समझते हैं, परन्तु यह उनकी बड़ी भूल है। यथा—याज्ञवल्क्य ने वर को अविप्लुत-ब्रह्मचर्य लिख कर कन्या के लिए, 'अनन्यपूर्विकाम्' शब्द का प्रयोग किया है। सामान्य विवाह में जैसे वर ब्रह्मचारी हो वैसे ही कन्या किसी से दूषित की हुई न हो। इसी तरह से और ऋषियों ने कन्या को 'असंस्पृष्टमैथुनाम्' लिखा है। पुनर्विवाह के लिए ये वचन लागू नहीं हो सकते।

कोई-कोई यह कह बैठते हैं कि 'स्त्रीणामुद्वाह एकोवैवेदोक्तः पावनो विधिः' से पुनर्विवाह स्त्रियों का हो ही नहीं सकता।

प्रकरण से पृथक् कर बृहत्पराशर के सादे वचन को उद्धृत कर प्रतिवादी महाशय बड़ा अन्याय करते हैं। यहाँ अभिप्राय यह है कि स्त्रियों का विवाह ही केवल वेदोक्त संस्कार है—उनका उपनयन नहीं होता।

कोई लोग यह भी कहते हैं कि महाभारत के आदिपर्व में नीचे लिखे हुए श्लोकों से पुनर्विवाह का निषेध पाया जाता है :—

दीर्घतमा उवाच—

अद्य प्रभृति मर्यादा मया लोके प्रतिष्ठिता।
एक एव पतिर्नार्या यावज्जीव परायणम्॥
मृते जीवति या तस्मिन् नापरं प्राप्नुयान्नरम्॥
अभिगम्य परं नारी पतिष्यति न संशयः॥

दीर्घतमा कहते हैं कि "मैं आज से लोक में मर्यादा स्थापित करता हूँ कि नारी का एक ही पति होगा, वह जीवन भर उसका आश्रय करेगी, वही पति यदि मर जाय या जीवित रहे तोभी नारी अन्य पुरुष को प्राप्त न हो। नारी अन्य पुरुष के पास जायगी तो निस्सन्देह पतित होगी।" इस श्लोक का ठीक-ठीक भाव प्रकरण से ही प्रकट होता है। महाभारत आदिपर्व के ११४ अध्याय पढ़ने से विदित होगा कि दीर्घतमा अपनी स्त्री प्रद्वेषी से बहुत असन्तुष्ट थे और उन्होंने कुपित होकर यह धर्म का विधान किया और इस तरह से उन्होंने अपनी स्त्री की स्वच्छन्दता को रोकना चाहा। प्रद्वेषी ने अपने पति को गङ्गा में फेंकवा दिया। बलिराजा उस समय गङ्गा में स्नान करते थे और उन्होंने उनको

निकलवा लिया। फिर दीर्घतमा से राजा ने अपनी नारी में पुत्र उत्पन्न कराया। यदि दीर्घतमा का यह वचन चालू होता तो दूसरी स्त्री के साथ स्वयं गमन न करते। यदि यह वचन चालू होता तो अर्जुन भी नागराज की विधवा कन्या का पाणिग्रहण करने के लिए तय्यार न होते।

हमने पुनर्विवाह के पक्ष तथा विपक्ष के शास्त्रोक्त वचनों की यथाशक्ति समीक्षा की है, और हम आपद्धर्म में पुनःसंस्कार को सिद्ध मानते हैं। बड़ी-बड़ी शङ्काओं का जवाब हम पहले ही दे चुके हैं और दिखला चुके हैं कि ये पुनर्विवाह को काट नहीं सकतीं। अङ्गिरा और बृहत्पराशर पुनर्विवाह को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। उन दोनों के वचन से यही साबित होता है कि पुनर्भू के अन्न को न खाना चाहिए (यथाहतुः—अन्यदत्ता तु या कन्या पुनः अन्याय दीयते। अस्या अपि न भोक्तव्यं पुनर्भूः कीर्तिता हि सा।) ये वचन विधवा-विवाह को मना नहीं करते। व्यास, लघु-हारीत ने यद्यपि स्पष्ट रूप से निषेध नहीं किया है, किन्तु उनका विरोध अवश्य टपकता है। वैद्यनाथदीक्षितीय पृष्ठ ११६ में जो वचन (पत्यौ मृतेपिया योषित् वैधव्यं पालयेत् कचित्, सापुनः प्राप्य भर्त्तारं स्वर्गभोगान् समश्नुते।) दिया है, उससे केवल यही विदित होता है कि पुनर्विवाह की अपेक्षा वह वैधव्य को अच्छा समझते हैं। कश्यप ने पुनर्भू स्त्रियों को कुला-धम कहके त्याज्य कहा है और लघु-आश्वलायन का विरोध स्पष्ट है। दूसरी तरफ मनु, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, बौधायन, नारद,

पराशर, कात्यायन, शातातप पुनःसंस्कार की आज्ञा देते हैं। विष्णु और वृहतविष्णुवसिष्ठ के समान पौनर्भव को पुत्रों की श्रेणी में ऊँचा स्थान देते हैं। कश्यप, वृहत्पराशर, व्यास, लघु-आश्वलायन और लघु-हारीत कोई भी उन धर्म-प्रयोजकों में नहीं हैं जिनकी गणना याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में की है। व्यास मुनि ने स्वयं अपने पिता पराशर से कलियुग के धर्म वर्णन करने की प्रार्थना की थी और इनका वचन पराशर की अपेक्षा माननीय नहीं हो सकता। वृहत्पराशर स्मृति कोई बहुत प्राचीन ग्रन्थ नहीं है। केवल लघु-आश्वलायन स्मृति मिलती है और उसकी भी गणना कोई बड़ी प्राचीन स्मृतियों में नहीं की जाती है। आश्वलायन के नाम से न तो कोई स्मृति और न कोई धर्मसूत्र पाया जाता है। यदि पहले वर से ब्याह न हो सके तो कश्यप के अनुसार मनोदत्ता या वाग्दत्ता कन्या भी पुनर्भू है। परन्तु यह बात कलियुग में बिलकुल चालू नहीं है। इसी प्रकार जहाँ कहीं पुराणों में पुनर्विवाह का निषेध आया है, उसके साथ ही साथ संन्यास धारण करना भी कलियुग के लिए वर्जित कहा है। परन्तु जैसा इतिहास के दृष्टान्तों से मालूम होता है, कलियुग में पुनर्विवाह अथवा नियोग बन्द नहीं हुआ, और कौन नहीं जानता कि इस युग में कितने विख्यात संन्यासी हो चुके हैं।

जैसा हम पहले कह चुके हैं, केवल अक्षतयोनियों का पुनःसंस्कार इस समय हमारा अभीष्ट है। यदि मनु के समान एक भी धर्मप्रयोजक ऐसे पुनःसंस्कार की आज्ञा देते तो हमारे लिए

पर्याप्त थी, परन्तु पाठकगण को मालूम है कि मनु ही नहीं, किन्तु याज्ञवल्क्य, बौधायन, वसिष्ठ, शातातप, नारद, विष्णु और बृहत् विष्णु स्पष्टरूप से पुनःसंस्कार का विधान करते हैं। नियोग के समर्थक स्वा० दयानन्द सरस्वती ने भी अक्षतयोनियों के पुनर्विवाह की सम्मति दी है। इन अक्षतयोनियों में अधिकतर वे हैं जिनको बाल्य-अवस्था ही में वैधव्य भोगना पड़ा। वैधव्य की शिकार दुधमुँही बच्ची भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं। इस अभागे देश में सब कुछ सम्भव है। इन अक्षतयोनियों की संख्या अब लाखों की तादाद में है। इनमें से बहुत सी ऐसी दुर्भागिनी हैं, जिन्हें अपने विवाह का स्मरण भी नहीं; इनसे अधिक वे हैं जो स्वामी के दर्शन के पूर्व ही विधवा हो गईं; और इनसे भी अधिक संख्या उनकी है जो पति के घर गई-आई हों, परन्तु सह-वास के पहले ही जिन्होंने विधवापन कमा लिया। इन अक्षतयो-नियों का विवाह न करना घोर अन्याय है। इन अबोध बालिकाओं के जीवन को निर्दयता से कुचल कर देश तथा समाज की उन्नति की आशा केवल दुराशा-मात्र है। जिस देश में धर्म अथवा न्याय का विचार नहीं होता, उसका अधःपतन अवश्य होगा। यदि हिन्दुओं में दया होती, तो ऐसी बालिकाओं पर कुठार ही न उठाया जाता; यदि विवेक होता, तो कुठार कभी चलाया न जाता। यदि देश की स्थिति पर कुछ भी ध्यान दिया जाता, तो शास्त्र का एकमात्र वचन ही विधवाओं के पुनरुद्धार के लिए पर्याप्त होता। परन्तु शास्त्रों की स्पष्ट आज्ञा होते हुए भी

जो पण्डितों ने धर्म के नाम पर देश तथा हिन्दू-समाज को क्षति पहुँचाई है उसका उल्लेख व्यथित हृदय नरम शब्दों में कर नहीं सकता। पापों का प्रायश्चित्त अब भी सम्भव है; अबोध बालिकाओं का जीवन अब भी सुखद और आशामय बनाया जा सकता है। क्या अभागे देश के वासी अब भी हठ, अन्याय और अदूरदर्शिता से पिण्ड छुड़ाने में समर्थ होगें ? देखें, वे आगे क्या करते हैं ?

देखता हूँ कि जाति डूबेगी, है जमा नित्त हो रहा आँसू !
लाखहा बेगुनाह बेवों की, आँख से है घड़ों बहा आँसू !!
सोग बेवों का देखती बेला, बैठती आँख टूटती छाती !
जो न रखते कलेजे पर पत्थर, आँख पथरा अगर नहीं जाती !!
ब्याह दी जायँगी न बेवाएँ, कौन सिर पर कलङ्क ले जीवे !
नीच का घर बसा-बसा करके, मूँछ नीची करें भले ही वे !!
सुन सकें क्यों गोहार बेवों की, क्यों गले पर छुरी न हो फिरती !
हम गिरेंगे कभी न ऊँचे चढ़, गिर गई मूँछ तो रहे गिरती !!
जाति कैसे भला न डूबेगी, किस लिए जाय बहन दे खेवा !
जब नहीं सालती कलेजे में, चार औ' पाँच साल की बेवा !!
दिन-ब-दिन बेवा हमारी हीन बन, दूसरों के हाथ में हैं पड़ रहीं !
बन रही हैं आँख का तारा वहीं, जो हमारी आँख में है गड़ रहीं !!
हैं अगर बेवा निकलने लग गई, पड़ गया तो बदतियों का काल भी !
आबरू जैसा रतन जाता रहा, खो गए कितने निराले लाल भी !!

['चाँद' से उद्धृत] —उपाध्याय

परिशिष्ट

पुनर्विवाह के विषय में विपक्षी इस बात पर बहुत ज़ोर देते हैं कि शास्त्रानुकूल एक बार दान की हुई कन्या का दुबारा दान नहीं हो सकता, और 'विधवोद्वाहशङ्कासमाधि' के अधिक भाग में इसी दान की मीमांसा की गई है। गृह्यसूत्रकारों ने विवाह-संस्कार में पाणिग्रहण, परिणयन, शिलारोहण, लाजा-होम, सप्तपदीगमन और चतुर्थी कर्म की भाँति पिता के द्वारा कन्यादान का कोई उल्लेख नहीं किया है। इससे स्पष्ट है कि पाणिग्रहण इत्यादि ही विवाह-संस्कार की मुख्य क्रियाएँ हैं, कन्यादान नहीं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि गृह्यसूत्र वैदिक ग्रन्थ हैं और स्मृतियों से कहीं अधिक प्राचीन और मान-नीय हैं।